विभाग -14

ध्यानम् ब्रह्म



धारणा - 109

जगत मिथ्या भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 109

इन्द्रजाल सम जग को जानि, मिथ्या सर्व भाव को मानि।
केवल सत का करहि बोधा, चित्त में अक्षय सुख संबोधा।।

ध्यान विधि - 109

विश्व को इन्द्रजाल समान समझकर सत् का बोध करके अक्षय सुख को प्राप्त कर लो ।



अगर वास्तव में जगत मिथ्या है तो फिर सत्य क्या है? ऐसा सवाल आपकी बुद्धि में से नहीं परंतु कभी आपके भीतर से उठा है? आपके हृदय से उठा है? अगर उठा है तो खोज प्रारंभ हुई? अगर खोज शुरू भी की तो पूर्णता तक पहुंची? अगर नहीं पहुंची तो क्यों नहीं पहुंची? - क्योंकि बातें केवल बाते हैं। आपको बातें करनी हैं। और वह भी अपनी मर्जी के अनुसार। चालाकी से, काट छांट कर के।

प्रिय साधको!

सदाशिव पार्वती को यह विधि बताते हुए कहते हैं कि इस जगत को इन्द्रजाल समान भ्रामक और मिथ्या मानकर उस विषय में उत्पन्न होते सारे मनोभावों को भी मिथ्या समझो।

अखिल विश्व भले सत्यरूप भासित होता हो परंतु सबकुछ जादूगर के खेल की तरह माया का खेल है।

प्यारे साधको!

शिव कहते हैं कि जगत मिथ्या है, जगत माया है, जगत झूठा है परंतु यह सब केवल सुनी हुई और याद कर ली हुई बातें हैं। सब बाते हैं बातों से क्या? बातों से कुछ नहीं होता। ये तो एक राजनीति जैसा हो गया। हर नेता बारी बारी प्रजा को मूर्ख बनाता रहता है। हर पक्ष गरीबी हटाओ, निरक्षरता हटाओ, मंहगाई हटाओ ...... को चुनाव का मुत्सद्दा बनाकर समाज को ठगते रहते हैं। प्रश्न वहाँ के वहाँ ठहरे हैं।

ऐसा ही अध्यात्म और धर्म के क्षेत्र में भी है। लोग ज्ञान की बड़ी बड़ी बातें करना सीख लेते हैं। अच्छी अच्छी बातें करना सीख लेते हैं।

बातों का क्या? सब कहते हैं कि जगत मिथ्या है। परंतु उसके मिथ्यात्व को जानकर उससे पार जाना कोई नहीं चाहता।

जगत मिथ्या है तो जगत में इतना रस क्यों ले रहे हो? मुझे आकर लोग पूछते हैं कि जगत मिथ्या है तो सत्य क्या है? मैंने कहीं लिखा है –

तू है सच्चा सवाली तो जवाब अंदर से आएगा
उठेगी रोशनी तेरी रगों के क़तरे क़तरे में।

अगर वास्तव में जगत मिथ्या है तो फिर सत्य क्या है? ऐसा सवाल आपकी बुद्धि में से नहीं परंतु कभी आपके भीतर से उठा है? आपके हृदय से उठा है? अगर उठा है तो खोज प्रारंभ हुई? अगर खोज शुरू भी की तो पूर्णता तक पहुंची? अगर नहीं पहुंची तो क्यों नहीं पहुंची? – क्योंकि बातें केवल बाते हैं। आपको बातें करनी हैं। और वह भी अपनी मर्जी के अनुसार। चालाकी से, काट छांट कर के।

प्यारे साधको!

आदमी में तो सच बोलने का साहस ही नहीं है। परंतु बेचारा झूठ भी अधूरा बोलता है। सारी बातें अधूरी। ऐसे लोग जिंदगी को पूरी तरह से जी ही नहीं पाते। जो मनुष्य प्रमाणिक बातें नहीं कर सकता है, ऐसे मनुष्य से और क्या अपेक्षा की जाए?

शिव कहते हैं कि जगत जादू के खेल के समान है अर्थात मिथ्या है। बस, चतुर आदमी ने आध्यात्मिक अथवा ज्ञानी होने का दिखावा करने के लिए इतने शब्द सीख लिए।

दोस्तो, आदमी के पास बुद्धि अपनी है परंतु विचार अपने नहीं हैं। उन्हें विचारों की चोरी करने की आदत हो गई है। जो मति मौलिक

विचार नहीं कर सकती अथवा मौलिक विचार दे नहीं सकता ऐसे आदमी की मति का क्या करना? क्या अर्थ ऐसी बुद्धिमता का?

कुछ ज्यादा चालाक लोगों ने उससे आगे के विचार भी चुरा लिए हैं और इधर उधर उनके मिथ्या ज्ञान का प्रदर्शन करते रहते हैं। आगे का विचार है "ब्रह्म सत्य"। परंतु इससे भी क्या? चोरी तो चोरी है, गुनाह तो गुनाह है। अपराध तो अपराध है। आपका मन जबतक शास्त्र से उठाई हुई बातें करता रहेगा तब तक आप कोई ज्ञानी, सत्संगी या भक्त नहीं हैं। केवल धार्मिक उठाउगीर हैं।

आप कहते हैं कि ब्रह्म सत्य है। तो मैं पूछती हूँ कि आपने उस सत्य ब्रह्म का कभी अनुभव किया है? मुझे प्रमाण नहीं चाहिए, प्रमाणिकता चाहिए। आपको अनुभव हो गया तो काफी है, फिर प्रमाण की जरूरत नहीं है। आपके रहन सहन व आपका उठना – बैठना, आपकी हौरा, आपकी सोच, आपका व्यवहार, आपका मौन, आपकी प्रसन्नता अथवा उदासीनता स्वयं प्रमाण बनकर सत्य को बताने लगेगी।

अगर अनुभव के बिना आप शास्त्रों से उठाऊगीरी कर रहे हैं तो वह कैसा लगेगा, पता है? जैसे कोई वैश्या, सती धर्म की बातें कर रही हो अथवा चोर अस्तेय की।

खैर छोड़ो, मैं यह सह क्यों कह रही हूँ? दोस्तो, आपको जगाने के लिए। आप इन ध्यान विधियों में से गुजरकर एक अनुभव सिद्ध साधक बनो, एक सच्चे साधक बनो। एक प्रमाणिक साधक बनो, इसलिए। ना कि आपसे मेरा कोई विरोध या कोई पूर्वग्रह है।

ये सब मैं इसलिए कह रही हूँ कि मैं वास्तव में आपको प्रेम करती हूँ। आपको एक उत्तम अवस्था में देखना चाहती हूँ। जैसे कि हर

माता अपने बच्चे को विश्व के श्रेष्ठतम और महान लोगों में से देखना चाहती है, ठीक वैसे ही।

तो साधको! अब विधि को ध्यान से समझो।

शिव कहते हैं कि यह जगत इन्द्रजाल समान है कपोल कल्पित है। जैसे कागज़ के टुकड़ों पर या कैनवास पर बनाया हुआ कल्पना चित्र।

दोस्तो, यह जगत भी एक बड़ा कैनवास ही है। और किसी अदृश्य चित्रकार ने उसपर विविध चित्र खींचे हैं; हम और आप उन चित्रों का हिस्सा हैं। परंतु याद रहे, चित्र में बहता हुआ पानी आपकी प्यास नहीं बुझा सकता। इसी तरह मिथ्या जगत आपको वास्तविक सुख नहीं दे सकता।

प्यारे साधको!

यह बात विशुद्ध तर्क बुद्धि के साथ साथ अनुभूति से ही समझ में आ सकती है। सम्यक सोच के बाद सम्यक साधना के द्वारा ही सत्य उजागर होता है और उसे समझा जा सकता है। साधना मनुष्य को जगाती है। जाग्रति के बिना सत्य भी बेचारा है।

जगत मिथ्या है – यह सत्य ध्यान के द्वारा अनुभव में आ जाएगा तब जगत के प्रति उत्पन्न होते चित्र – विचित्र भाव भी मिथ्या हो जाएंगे। मुझे समझने की कोशिश करना। भावनाएं खत्म नहीं होंगी, संवेदना नष्ट नहीं होंगी परंतु मन में लगातार पैदा होते मिथ्या भाव बंद हो जाएंगे। ध्यान से मिथ्या भावों की उत्पत्ति की संभावना ही कम हो जाएगी।

दोस्तो, नाव में बैठकर चलने वाले को वृक्ष, पर्वत, पूरे के पूरे गाँव और सारी चीजें दिशा बदलती हुई और चलती हुई मालूम पड़ती हैं।

परंतु वह वास्तविकता नहीं है। केवल भ्रम है। ऐसा ही है यह मन और जगत।

प्यारे साधको!

इस वास्तविकता का बोध हो जाने से और उस बोध पर ध्यान केन्द्रित करने से बोध के क्षण लंबे होते जाएंगे। और फिर केवल सत का अखंड बोध रहेगा। इस बोध से कभी नष्ट न होने वाले सुख की प्राप्ति होती है। फिर साधक भले कोई भी प्रवृत्ति करता हो परंतु बोध दशा में स्थिरत्व आने से अक्षय सुख की अवस्था सहज ही बनी रहती है। और यही सदा समाधि की अवस्था है। वही सत् ज्ञान है।

मैंने कहीं लिखा है –

इलम के हैं हज़ारों रास्ते, पर इल्म तो इक है
भटकना बंद हो जाए, अगर तू जान ले बंदा।

दोस्तो, सत ज्ञान प्राप्त करने के अनेक रास्ते हैं परंतु ज्ञान अनेक नहीं है वह तो एक ही है। अगर आप उसे जान लेंगे तो मन का भटकना स्वतः बंद हो जाएगा।

प्यारे साधको!

अब आरंभ करो विधि का। अगर आप अन्य अवलंबनों से या साधनों के आधार पर ध्यान करना नहीं चाहते परंतु केवल आत्मबोध के आधार पर केवल शुद्ध समझ के आधार पर, केवल जाग्रति के आधार पर और केवल सत को आधार बनाकर पार उतरना चाहते हैं तो अपना लो इस विधि को। विधि अद्‌भुत है। यहाँ सुबह शाम या बीस मिनिट या तीस मिनिट अथवा तीन महीने की अवधि नहीं है। यहाँ तो प्रतिपल सजगता के साथ जगत मिथ्या है इस भाव को अंतर में बनाए रखना है।

आरंभ में कठिन लगेगा, क्योंकि मन का अभ्यास जगत को सत्य मान लेने का है। आप जगत में आए हैं यही सबसे बड़ा सच लगता है जगत को मिथ्या कहने मतलब पहले स्वयं की मौजूदगी के मिथ्यात्व का स्वीकार करना है। ऐसा नहीं कि मेरे चित्र के लड्डू वास्तविक हैं और अन्य के चित्र के लड्डू मिथ्या।

अगर जगत मिथ्या है तो जगत में जो कुछ भी है वह सब मिथ्या है। और अगर जगत सत्य है तो सबकुछ सत्य है।

प्यारे साधको!

यह एक विशिष्ट ध्यान विधि है। इस विधि में से आप तभी गुजर पाएंगे जब यह विधि आपके चित्त को अनुकूल हो। अगर यह विधि आपके चित्त के लिए अनुरूप लग रही है। तो विधि में उतरना आरंभ कर दो। बड़ी बड़ी बातों की व्याख्याओं में, चर्चाओं में, दलीलों में और वाद विवाद में उतरना यह नासमझी है।

दोस्तो, ध्यान में प्रवेश करना सीख लो; छोटे बड़े सभी सत्य स्वत: ही समझ में आने लगेंगे। ज्ञान व्याख्या का विषय नहीं है।

सबद के पार, अक्ल के पार मन के पार है इलम
उसे तू जान ले और मौत के उस पार जा कायम।

जो जान लेता है, वो पा लेता है। और जब पा लिया तभी जानना सार्थक होता है।

प्यारे साधको!

विधि में उतरो और अनुभव कर लो जगत के मिथ्यात्व का।

धारणा - 110

द्वंद्व उपेक्षाभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 110

मैं सुखी हूँ या दुःखी न मानो, दोउ के बीच में कौन है जानो।
शेष सत्व से सत्य स्वरूपा, परम प्रकाश परम सुख रूपा।।

ध्यान विधि - 110

स्वयं को सुखी या दुःखी न मानकर दोनों के मध्य में जो है उस साक्षीतत्व को जानकर परम प्रकाश का अनुभव करो ।



स्वयं के मन में आते हुए बदलावों को देखते देखते अनुभव करते करते स्वयं रूपांतरित होते होते संबोधि तक पहुंच गए। और उन्हें सम्यक ज्ञान प्राप्त हो गया कि हर्ष और शोक का मूल कारण सुख-दुःख नहीं है, वह तो मन है। ध्यान के द्वारा मन से अ-मन होने के बाद महसूस हुआ कि मन गया तो मन के साथ सारे मनोभाव भी गए। मनोभाव गए तो सुख-दुःखादि द्वंद्व भी गए। और बुद्ध इस सत्य को एक सजग आध्यात्मिक संघ के साथ सत्य को बाँट रहे हैं।

प्रिय साधको!

मन का स्वभाव है द्वंद्व में जीना और द्वंद्व पैदा करना। ये सारी सृष्टि द्वंद्व से भरी है। वास्तव में द्वंद्व से मुक्त होना है। परंतु द्वंद्व आकर्षक भी लगता है। मिथ्या जगत के अस्तित्व के लिए द्वंद्व शायद अनिवार्य है। जैसे कि दिन रात, पाप–पुण्य, दु:ख–सुख, सज्जन–दुर्जन, उदय–अस्त, धरती–आसमान, ऊंच–नीच, देव–दानव, अमृत–ज़हर, प्रेम–नफ़रत, मिलन–विरह, जीवन–मृत्यु। कितने द्वंद्व!

अब जरा सोचो! यह जगत अगर द्वंद्वपूर्ण नहीं होता तो मन को रस नहीं रहता इस जगत में। तंत्र शास्त्र यही चाहता है कि मन अमन हो जाए और योग चाहता है कि मन निरस हो जाए, अदृश्य हो जाए, नष्ट हो जाए। कुछ शब्द अलग हैं। लक्ष्य एक ही है- मन के पार जाना।

आपको अगर कोई प्रश्न करे कि जीवन में मनुष्य के लिए सबसे बड़ा द्वंद्व क्या है? तो सीधा जवाब है कि जीवन और मृत्यु का सुख दु:ख।

प्यारे भक्तो!

याद रहे, सुख और दुःख दोनों में से एक भी शाश्वत नहीं, वात्विक नहीं; वह तो सापेक्ष है। अगर पत्नी पति से प्यार करती है परंतु पति फारगति लेना चाहता है तो वह स्थिति पत्नी के लिए दुःख की है परंतु यदि फारगति मिल गई तो वही स्थिति पति के लिए सुखरूप बन जाती है।

इस जगत में एक का दुःख दूसरे के लिए सुख बन जाता है। इसी कारण से सुख दुःख को सापेक्ष कहा है।

तंत्र चाहता है कि मनुष्य शाश्वत रूप से सुखी होने के लिए सारे द्वंद्व भावों के पार चला जाए। आप जब तक शरीर में हैं तब तक सुख दुःख के पार नहीं जा सकते। परंतु सुख दुःख के भावों से पार जा सकते हैं। ध्यान आपको इस अवस्था तक ले जा सकता है। जहाँ सुख दुःख दोनों असहाय हो जाते हैं, अगर आप एक ध्यानी हैं तो सुख दुःख आपको पराजित नहीं कर पाएंगे।

अध्यात्म की परम सीमाओं को छूने के बाद बुद्ध ने भी यही बात बताई है। बुद्ध अपने चार महासत्यों में कहते हैं कि जगत में दुःख है। ऐसा क्यों कहा? क्योंकि उसके लिए दुःख अनुभव बन गया था। फिर कहते हैं कि दुःख के कारण हैं, क्यों? क्योंकि उन्हें उन कारणों का भी पता चल गया था। यह अनुभव शास्त्रीय स्तर का नहीं था परंतु अस्तित्वगत रूप से हुआ था। फिर कहते हैं कि दुःख का उपाय है।

प्यारे साधको!

जगत में दुःख है और दुःख के कारण हैं। यहाँ तक तो सबकोई पहुंच जाते हैं क्योंकि शायद सबके पास यह अनुभव है। परंतु बुद्ध और आप में इतना ही फर्क है कि वह चिंतन में, साधना म। ध्यान में आगे बढ़े,

सत्य की गहराईयों में उतरे और फिर निवेदन दिया कि दुःख मुक्ति का उपाय है।

आप भी जानते तो हैं कि दुःख मुक्ति का उपाय है। परंतु कोरी जानकारी से क्या? ऐसी जानकारी तो उधार है। आपने किसी न किसी के पास से सुना है या कहीं पढ़ा है तो आप भी बोलने लगे कि दुःख मुक्ति का उपाय है किन्तु यह आपका अनुभवित सत्य नहीं है।

बुद्ध के बोलने में और आपके बोलने में बहुत फर्क है। और इसी वजह से हजारों हजारों लोग बुद्ध को समर्पित हो गए और आपकी घर में भी कोई नहीं सुनता। क्योंकि सब जानते हैं कि आप दिमागी बातें करते हैं, सब उधार का माल है, आपकी स्वयं की कमाई कुछ भी नहीं है।

अंत में बुद्ध कहते हैं कि दुःख मुक्त स्थिति है। यह बात बुद्ध केवल उपदेश देने के लिए नहीं कह रहे हैं जैसे आज के तथाकथित ज्ञानी पंडित और कथाकार ...।

बुद्ध तो अपना अनुभव बांट रहे हैं समर्पित भक्तों के साथ। एक अर्थ में बुद्ध स्वयं की बात कर रहे हैं। अर्थात बुद्धत्व की बात कर रहे हैं। स्वयं की अवस्था की बात कर रहे हैं।

स्वयं के मन में आते हुए बदलावों को देखते देखते अनुभव करते करते स्वयं रूपांतरित होते होते संबोधि तक पहुंच गए। और उन्हें सम्यक ज्ञान प्राप्त हो गया कि हर्ष और शोक का मूल कारण सुख-दुःख नहीं है, वह तो मन है। ध्यान के द्वारा मन से अ-मन होने के बाद महसूस हुआ कि मन गया तो मन के साथ सारे मनोभाव भी गए। मनोभाव गए तो सुख-दुःखादि द्वंद्व भी गए। और बुद्ध इस सत्य को एक सजग आध्यात्मिक संघ के साथ सत्य को बाँट रहे हैं।

प्यारे साधको!

विज्ञान भैरव तंत्र में शिव इस बात को लाखों वर्ष पहले कह चुके हैं। परंतु मनुष्य का मन कम्प्यूटर की तरह है। उसे समय समय पर जरूरत के अनुसार रीफ्रेश करना पड़ता है। इसी तरह ज्ञान चर्चा से मनुष्य के चित्त को भी रीफ्रेश करना पड़ता है।

समय समय पर इस पृथ्वी पर ऐसी उर्जाओं का अवतरण होता रहता है कि वे समय की माँग के अनुसार मनुष्यता को सत्य का पुनर्स्मरण कराते रहते हैं। जगाते रहते हैं।

शिव, कपिल, राम, कृष्ण, पतंजलि, बुद्ध, महावीर, अश्वघोष, नागार्जुन, सरहपा, कृष्णमूर्ति कितने लोग आए इस धरती पर! और इस बगिया को संवारते गए। सुवासित करते रहे और स्वयं द्वंद्व मुक्त होकर दूसरों को भी द्वंद्व मुक्ति की अवस्था में पहुंचाने का प्रयास करते रहे।

शिव कहते हैं कि मैं सुखी हूँ अथवा दुःखी हूँ यह तो मन का भाव है। दोनों के पार हो जाओ और उन दो भावों के बीच में कौन है उसे जानो। जो बचेगा वही सच्चा स्वरूप है। वही परम प्रकाश रूप और परम सुखमय है।

प्यारे भक्तो!

सुख–दुःख के भाव करने वाले मन के पार जाकर जो लोग साक्षीभूत अंत:करण के सत्व को जान चुके हैं उनकी अवस्था के बारे में मैंने कुछ पंक्तियां लिखी हैं।

कभी रसगुल्ला कभी फांका है
और जीवन जिसका बांका है
भगवान को भीतर झांका है

बंदा वो सच्ची माँ का है।

कभी हंसता है कभी रोता है
कभी रूखी सूखी खाता है
न कोई शिकायत कोई गिला
बड़ी धन्य उसीकी माता है।

ऐसे लोगों की सराहना तो देवगण भी करते हैं। सुख-दुःख की मनोदशा से ऐसे ज्ञानी पुरुष पार हो चुके होते हैं। ऐसी आत्माओं का हंसना और रोना दोनों में आनंद और मस्ती होती है, द्वंद्व भाव नहीं। ऐसे पुरुषों के दिल में से शिकायतें मिट गई होती हैं। प्रश्न प्रश्न नहीं रहते। हर समस्या समाधान को साथ लेकर आती है। यह समाधान क्षणिक नहीं होता परंतु ज्ञान से जन्मा हुआ शाश्वत होता है।

प्यारे साधको!

जब आदमी सुख और दुःख दोनों के पार चला गया तो फिर क्या भोगना? और क्या त्यागना? यह त्याग और भोग की द्वंद्व से भी स्वतः मुक्ति मिल जाती है। एक द्वंद्व मुक्ति सभी द्वंद्वों से मुक्त कर देती है।

अब त्याग नहीं कोई भोग नहीं
कोई अपने पराए लोग नहीं
दिन रैना योग बियोग नहीं
चाहे मानो या ना मानो

द्वंद्व मुक्ति भाव ध्यान आपके परमात्मा को इतना प्रसन्न रखता है कि फिर कोई इच्छाएं, कोई तमन्ना, कोई जुस्तजु या ख्वाहिशें बचती ही नहीं; सारी उलझने अदृश्य हो जाती हैं।

अरमान में अब उलझेंगे नहीं
कुछ समझे या बूझेंगे नहीं
पाबंदी लगी सब बक बक पे
इससे अच्छा क्या हो सकता?

निर्द्वंद्व भाव अथवा द्वंद्व मुक्ति की अवस्था महाशांति और महामौन में ले जाती है। द्वंद्व तभी मिटता है जब साक्षी जाग जाए। भेद को स्वीकारने वाला कोई बचे नहीं। और वह साक्षी भाव ही केवल ज्ञान है। वह अभिव्यक्ति के पार की अवस्था है। ऐसी अवस्था में शब्द मौन में चले जाते हैं।

लोग मिलते हैं तब कहते हैं कि थोड़ी सुख-दु:ख की बातें कर लीं तो मन हल्का हो गया। वास्तव में यह मन को खाली करने का ही रास्ता है। सुख-दु:ख रोते रहने से कभी कम नहीं होते। तंत्र एक ऐसी कुंजी देता है कि मन हमेशा हमेशा के लिए खाली हो जाए। मन खाली हो गया तो सुख-दु:ख कहाँ रहेंगे? फिर न द्वंद्व रहा न मन रहा। क्योंकि मन के खाली होने का अर्थ है मन का अदृश्य हो जाना। और मन के होने का अर्थ है असंख्य विचारों का जाल बुनने की प्रक्रिया चालू रहना।

दोस्तो!

ज्ञानावस्था में क्या होता है?

हर हद से गुज़र जाना है यहाँ
हंसकर ही ज़हर खाना है यहाँ
रोते रोते गाना है यहाँ
है पसंद तो पहलू बदलो।

प्यारे साधको!

ये जीवन का पहलू बदलने की बाते है। दिशा बदलने की बात है। जीने का और सोचने का ढंग बदलने की बात है। संपूर्ण रूपांतर और निरंतर साधना की बात है। ध्यान मनुष्य को नया जन्म दे देता है। आदमी के लिए "यू टर्न" का निर्माण करता है। आप यू टर्न लेने के लिए तत्पर हो तो आपका सद्भाग है। यह ध्यान विधि आपको परम स्वतंत्रता की अनुभूति कराएगी। सभी जंजीरें कट जाएंगी। ऐसा मौका हरेक की जिंदगी में नहीं आता।

मोहताज नहीं अब रहे "मोहिनी"
मौसम कुछ अब ऐसा आया
है मुमकिन सब, ना कुछ मुहाल
मुद्दत से यह मौका पाया।

दोस्तो, अब जागो। अब बहुत हो गया। सुख दुःख में बहुत उलझ लिए। रोना धोना खूब हो गया। बहुत कर लिया कैथारसिस मन को हल्का करने के लिए प्रज्ञा के द्वारों को बंद रखकर आपने बहुत उल्टियाँ कर लीं। माहौल को बहुत प्रदूषित कर लिया। बहुत मूर्ख बन चुके। सुख-दुःख के भावों की पकड़ से अब छूट जाओ।

सुख में मन प्रसन्न हो तब उसके संग मत चलो। स्थिर हो जाओ साक्षी तत्व पर वह बिन्दु ही मोक्ष का मोड़ है। दुःख में मन विचलित हो तब उस विचलितता से पीड़ित भी मत होओ। दोनों स्थितियों में खुद से पर होकर कुछ क्षण रुक जाओ। दृष्टा बनकर देखते रहो। वह देखने वाला जब जागता रहेगा तब आपका ध्यान फलित हो गया समझ लो।

चौबीसों घंटे करते रहो अभ्यास; एक भी मौका मत चूको। एक आध दो घंटे से घटना नहीं घटेगी। प्रतिपल की सजगता ही आपको प्रबुद्धत्व में पहुंचा देगी।



धारणा - 111

चिन्मयभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 111

अखिल विश्व अरु नख शिख देहा, चिन्मय रूप है समझो एहा।
एक संग दोउ में विकल्प रहिता, साधक परमोदय में स्थिता।।

ध्यान विधि - 111

अपना शरीर और समग्र विश्व परमात्मा स्वरूप है ऐसा समझकर दोनों से आसक्ति हटाकर परमोदय को प्राप्त कर लो ।



ऐसा भाव करो कि समग्र विश्व और नख-शिख शरीर परमात्मा का चलता फिरता शरीर है। स्वयं परमात्म स्वरूप ही है। दोस्तो, परमात्मा का आत्यंतिक स्वरूप तो चिन्मय ही है। वह चिन्मय स्वरूप इस विश्व में विविध रंगरूप के साथ विहार कर रहा है।

प्रिय साधको!

अब हम जा रहे हैं चिन्मय ध्यान की ओर। सबसे पहले चिन्मय के अर्थ को समझ लीजिए। चिन्मय का अर्थ है, जो विशुद्ध प्रज्ञायुक्त है, ज्ञानयुक्त है, आत्मिक है। एक अर्थ में चिन्मय यानि ज्ञानमयता। अर्थात स्वयं परमात्मा।

शिव कहते हैं कि ऐसा भाव करो कि समग्र विश्व और नख-शिख शरीर परमात्मा का चलता फिरता शरीर है। स्वयं परमात्म स्वरूप ही है। दोस्तो, परमात्मा का आत्यंतिक स्वरूप तो चिन्मय ही है। वह चिन्मय स्वरूप इस विश्व में विविध रंगरूप के साथ विहार कर रहा है।

दोस्तो, इस विधि में आपको ऐसे भाव करना है कि आपका शरीर भी चिन्मय है और दृश्य श्राव्य और स्पर्शादि सारे विषय वस्तुएं भी चिन्मय स्वरूप हैं।

प्यारे भक्तो!

आपको कभी कभी आश्चर्य हो ऐसे ऐसे ध्यान प्रयोग मिलते हैं विज्ञान भैरव तंत्र में। तंत्र एक अति पर जाकर बात करता है। तंत्र यह भी

कहता है कि आप चिन्मय रूप हो; देह और विश्व सब परमात्म स्वरूप है। उसकी उपासना करो। उस पर ध्यान करो। और दूसरी ओर तंत्र यह भी कहता है कि देह जगत और समग्र ब्रह्मांड केवल शून्य है। शून्य के सिवाय कुछ भी नहीं।

प्यारे भक्तों!

ऐसी बातें जब जब आती हैं तब तब आपका उलझन में पड़ना स्वाभाविक है। क्योंकि साधना के प्रारंभिक स्वरूप में साधक की आध्यात्मिक अवस्था अपरिपक्व होती है। ऐसी स्थिति में अनुभूतिओं के अभाव में आंतरिक अस्पष्टताओं के कारण साधक संशय में पड़ जाता है। और संशय में से प्रश्न उठने लगते हैं कि हम शून्य हैं कि परमात्मा हैं?

मैं कहती हूँ कि परमात्मा और शून्य भिन्न नहीं हैं। जिस तरह से शून्य शून्य रहकर भी बहुत महत्वपूर्ण है उसी तरह परमात्मा भी अदृश्य होने के बावजूद भी विश्व के लिए अनिवार्य है। इतना ही नहीं, वह स्वयं शून्य में वास करते हैं। वह परमात्मा शरीर की तरह स्थूल नहीं है। उसे आप छू नहीं सकते, केवल उसका अनुभव कर सकते हैं। उसको छूने का, पाने का और अनुभव करने का ढंग बिलकुल अलग होता है और यह है ध्यान। ध्यान आपको शून्य में भी ले जा सकता है और परमात्मामय भी बना सकता है।

मेरे कहने का तात्पर्य इतना ही है कि नए नए साधक को अथवा किसी को भी ध्यान की प्रत्येक विधि का अनुभव नहीं होता। कभी कभी अनुभव सिद्ध साधक भी एकाद विधि से ही पहुंच गया हो, ऐसा भी संभव है। हर साधक का हर विधि से गुजरना संभव भी नहीं और जरूरी भी नहीं है। अनेक विधियों को मैंने इसलिए दिया है कि एक नहीं तो दूसरी परंतु

साधक के लिए किसी ना किसी विधि से उसके अनुरूप साधना मार्ग खुला हो जाए और उसका विशुद्ध प्रज्ञा में प्रवेश हो।

मैं मूल बात यह कहना चाहती हूँ कि कुछ लोग करते कम और पढ़ते हैं ज्यादा। अनुसरण करना या अनुभव में उतरने की जहां बात आती है वहाँ पलायन कर जाते हैं। कुछ लोग तो इतना पढ़ लेते हैं कि इतनी सारी विधियाँ पढ़कर ही कन्फ्यूज़ हो जाते हैं। एक भी विधि में उतरना तो नहीं चाहते परंतु प्रत्येक विधि के लिए संशय करके उसके मन में पलायन करने के लिए कुछ प्रश्न तैयार होते हैं।

अगर आपको याद है अथवा आपने पढ़ा है तो बचपन में एक कविता आती थी। उसमें ऊंट सभी पक्षी के किसी न किसी अंग की आलोचना और उसपर व्यग्य कर रहा था। वह कहता है कि तोते की चोंच टेढी है, कुत्ते की पूंछ टेढी है, बगुले की गरदन टेढी है, हाथी की सूंढ टेढी है। तब उसे खरगोश कहता है कि ऊंट भाई! ज़रा अपनी ओर तो देखो! अन्य पशु का तो एक ही अंग टेढा है परंतु आपके तो अठारह अंग।

दुनियां में भी कुछ लोग ऐसे ही होत हैं। वे सबको पढ़ते हैं परंतु खाली पढ़ते हैं, वे अभ्यास या अध्ययन की कला नहीं जानते। वे मंत्र, तंत्र, वेद सबकुछ पढ़ लेते हैं। और फिर सबमें से कमियाँ ढूंढ निकालते हैं। फिर वही लोमड़ी वाली घटना। इसका तो आपको जरूर पता होगा – "अंगूर खट्टे हैं।"

जिन लोगों के लिए ध्यान कठिन है। जो लोग इतने चंचल हैं कि ध्यान में बैठ ही नहीं सकते, स्थिर नहीं रह सकते; वे लोग सीधा स्वीकार नहीं करते कि हम ध्यान के लिए सक्षम नहीं हैं। वे लोग मानते हैं कि ध्यान विधियाँ पढ़ लेने से शायद मैं ध्यान में उतर पाऊंगा।

तुलसी ने कहीं कहा है कि आकाश को दोहने से दूध प्राप्त नहीं होता। वैसे ही ध्यान के ग्रंथ पढ़ लेने से ध्यान की प्राप्ति नहीं होती। ऐसे लोगों का अभिगम भले हकारात्मक हो परंतु प्रयास अधूरा अथवा निरर्थक है। भाव की तीव्रता नहीं है। सच्ची प्यास नहीं है। ध्यान कोई टाईम पास करने की चीज़ नहीं है, वह तो है समय के पार जाने की कला। परंतु कुछ लोग मस्तिष्क को ध्यान की बातों से भरकर उन बातों को यहाँ तहाँ ऊंडेलते रहते हैं। वह भी उन जैसों के पास ही।

प्यारे साधको!

जिनके पास ध्यान में उतरने का सामर्थ्य होता है वह तो विधि को पकड़कर प्रयोग आरंभ कर देता है। बातों में समय नहीं गवांता। खैर! ध्यान के बारे में जानना एक बात है और ध्यान धरना दूसरी बात है। सत्य के बारे में जानना एक बात है और सत्य को जानना दूसरी बात है। समाज में कुछ लोग परमात्मा के बारे में सत्य के बारे में अध्यात्म के बारे में जानकारी इकट्ठी करते रहने में माहिर हैं। सारे कथाकार, पंडित, पुरोहित और पादरियों के दिमाग ईश्वर विषयक जानकारी से भरे हैं।

ध्यान कहता है कि पहले सभी जानकारियों से खाली हो जाओ, सबसे मुक्त हो जाओ। प्रारंभ में धारणा का आधार भले लो परंतु अंत में धारणा और धारणा में उतरने वाला भी खो जाता है तभी आप सही अर्थ में ध्यान को उपलब्ध हो पाते हो। ध्यान परमात्मा जैसा है। उसके बारे में बाते करने से वह प्राप्त नहीं होते। उसमें डूब जान से उसकी अनुभूति होती है।

प्यारे साधको!

यह सब मैं क्यों कह रही हूँ। मैं नहीं चाहती हूँ कि आप मेरी बताई हूई, भाषांतर की हुई, पद्यानुवाद की हूई या नई खोजी हुई विधियों को पढ़कर खुश हो जाओ। दोस्तो, पानी पानी रटने से प्यास नहीं बुझेगी, जल को प्राप्त करना पड़ेगा, पीना पड़ेगा। वैसा ही ध्यान का है।

इसलिए मैं आपको समय समय पर जगाती रहती हूँ। ध्यान के लिए प्रेरित करती रहती हूँ। आज का मनुष्य बहुत बदल गया है। वह इतना सरल चित्त नहीं रहा कि उसके हित में बताई गई बातों को भी वह आसानी से मान ले। उसके स्वार्थ के लिए भी उसे बार बार मोटीवेट करना पड़ता है। इस काम को भी मैं परमार्थ समझती हूँ।

आत्मकल्याण तो सब साधते हैं परंतु इसके लिए दूसरों को भी जगाना ये परमार्थ है।

अब फिर से ध्यान विधि की ओर आईए। विधि कहती है कि हृदय में ऐसा तीव्र भाव करो कि समग्र विश्व और नख से शिख तक का मेरा शरीर चिन्मय रूप है। यह भाव करते करते एक क्षण ऐसा आएगा कि आपके चित्त में चिन्मय के सिवाय और कुछ स्मरण नहीं रहेगा।

एक बात हमेशा याद रखना कि आप अपने मन से लाखों गुने बलवान हैं, शक्तिमान हैं, आप मतलब आपका नाम, रूप वाला शरीर नहीं; आप मतलब आपकी विशुद्ध चेतना। वही परमात्मा है, वही ब्रह्म है, उसकी संकल्प शक्ति से तो पूरे ब्रह्मांड का अस्तित्व है।

मन का स्वभाव है पल पल में बदलना। वह तो अनेक संकल्प विकल्प करता रहता है और आपकी असजगता के कारण आपको उलझाता रहता है परंतु एक बार जो आप जाग गए, आपने सत्य को पहले विधि के

द्वारा जाना, फिर अभ्यास किया, अभ्यास करके उसे समझा और समझने के बाद ध्यान में अनुभव कर लिया तो फिर तो मन बेचारा हो जाएगा, खो जाएगा। क्योंकि ध्यान में उतरने का एक मात्र संकल्प और उस संकल्प के प्रति मुड़ी हुई शक्तियों के सामने मन की क्षमताएं तो कुछ नहीं, वह तो जल्दी विदा ले लेगा। मन की ज्यादा चिंता मत करो; लक्ष्य ध्यान के प्रति दो।

मैं कहती हूँ कि विशुद्ध चेतना के द्वारा किए हुए संकल्प की शक्ति एक मन तो क्या हजार हजार लोगों के मन को निर्विकल्प अवस्था में ले जा सकती हैं।

तो अब उतरिए विधि में। तीव्र भाव से संकल्प करो कि मैं और मेरा सारा जगत केवल चिन्मय रूप है। परमात्मा रूप है –

ख़ुद में भी ख़ुदा को देखे जो
हर सांस इबादत होती है
चश्मेनम तस्बी के दाने
आंखों से रहम टपकती है

हुशियार रहे आबाद रहे
आफीफ रहे आज़ाद रहे
आसार है इतने बंदे के
जिसको परवाह किसीकी नहीं

है एक काम है एक नाम
है एक करम है एक धरम
है रहम रहम ना कोई भरम
ज़र्रे ज़र्रे से प्यार करो

प्यारे साधको!

विधि का परिणाम क्या है? विधि कहती है कि जगत और मेरा शरीर दोनों चिन्मय रूप हैं। मैं परमात्मा हूँ तो जगत भी परमात्मा है – ऐसी दृढ़ धारणा करते करते अभ्यास की पराकाष्ठा में एक समय ऐसा आएगा कि आपमें बोध जग जाएगा कि विश्व में परमात्मा के सिवाय किसी भी चीज का वास्तविक अस्तित्व नहीं है। और याद रहे परमात्मा कोई वस्तु या व्यक्ति नहीं है। वह तो कल्पनातीत है। वह मात्र है। शक्ति, प्राण, ज्ञान, प्रेम, प्रकाश, आनंद जिस रूप में स्वीकारो उस रूप में। परमात्मा पुस्तक का सत्य नहीं अनुभव का सत्य है। जगत में और स्वयं में केवल परमात्मा की अनुभूति का आरंभ हो जाने के बाद आपका मन, देह और जगत दोनों की कल्पना से अचानक विरक्त हो जाएगा। मैं कहती हूँ –

इलम में आपखुदी के लिए कोई जगह नहीं
ख़ूदा और ख़ुदी दो को इलम नामज़ूर करता है।

ज्ञानावस्था में केवल ईश्वरत्व का अनुभव ही रहता है परंतु इस अवस्था के लिए आपको ध्यान में डुबकी लगानी पड़ेगी भीतर उतरना पड़ेगा साधना की गहराईयों में डूबकर अनुभूति के विश्व में जाएंगे तभी शायद यह ध्यान फलित होगा।

तेरी रूह में समंदर से भी गहरी एक गहराई
लगा दे डुबकी शायद पकड़ में इल्म आ जाए।

इलम से मैं हूँ मस्ती में मेरी दुनियाँ है मस्ती में
मेरी हस्ती समाई इश्क में अब तो नशा दोहरा।

इलम आगोश में लेगा तो तुझको ही मिटा देगा
अगर तैयारी है तो खुद में डूबकर फिदा हो जा।



धारणा - 112

सर्वरूपोहम् भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 112

संशय रहित बनी दृढ ध्याओ, सर्व जीव निज रूप ही गाओ।
मैं सर्वत्र सर्व मम रूपा, तब प्रगटे महा सुख अनूपा।।

ध्यान विधि - 112

मैं सर्वत्र व्यापी हूँ और सब जीव मेरे समान ही हैं। इस परम सत्य को जानकर अनुपम सुख का अनुभव करो।



मन के द्वार पैदा किए और पकड़े हुए अनेक प्रकार के अहंकारों को चोट पहुंचती है। दुनियाँ ने दिया हुए उधार मान-पान और नाम को चोट पहुंचती है। मन कहता है कि गधे को और खुद को एकरूप कैसे समझें! ऐसा करना तो गधापन है। परंतु ऐसा केवल आदमी का मन ही सोचता है गधे का नहीं। मैं कहती हूँ कि समभाव से हटकर द्वैत भाव में जीना ही गधापन है। इसे कौन समझे?...

प्रिय साधको!

यह विधि दो विभिन्न विधियों के रूप में बांटी गई है। सर्वरूपोहम् भाव ध्यान और सर्वव्यापकता भाव ध्यान। क्या करना है इस विधि में? कौन सी कुंजी है इस विधि में प्रवेश करने की? उसे पहले पा लीजिए।

इस विधि में शिव कहते हैं कि संशय रहित बनकर दृढ भाव से ध्यान करो कि सर्वजीव मेरे समान ही है, मेरा ही रूप है, सर्व जीवों में मैं ऐसे बस रहा हूँ जैसे मैं मेरे शरीर में। मैं सर्वत्र हूँ और सर्व मुझमें आत्मरूप से समाए हुए हैं। सर्व जीव मेरा ही स्वरूप है। ऐसा भाव करने से साधक का महान और अनुपम सुख में प्रवेश हो जाता है।

प्यारे साधको!

पढ़ने में तो विधि बहुत सुंदर लगती है। परंतु प्रेक्टीकल में थोड़ा कठिन काम है। मन देहाभिमान में, जाति अभिमान में, मान-पान-पद-प्रतिष्ठामें, कभी रूपाभिमान में तो कभी कुलाभिमान में राचता है। मन बाहरी चीजों में और बाहरी विचारों में जीता है। मन हमेशा बहिर्मुखी है और चैतन्य अंतर्मुखी। मन आपका ऊपरी स्तर है और चैतन्य गहन स्तर।

मन भले बड़ा या पुराना दिखता हो। दोस्तो, बड़े का मतलब क्या करेंगे? वैसे तो मन सूक्ष्म है परंतु उसने सोच सोच कर, संकल्प विकल्प करके इतनी बड़ी जाल बुन ली है और फैला दी है कि बेचारा आत्मशक्ति विस्मृत मनुष्य उसके पास लाचार बनकर, उसके अनुसार मदारी के मर्कट के भांति नाचता है।

मन दुन्यवी बातों की पकड़ छोड़ने को तैयार नहीं होता और ध्यान आपको क्षण में मुक्त करना चाहता है। ऐसी स्थिति में शुरुआत में साधक एक भयंकर मनोद्वंद्व से गुजरता है। खुद के सामने या खुद के साथ खुद की जेहाद चलती है। और मन दंगा फिसाद करता रहता है।

यह विधि बड़ी महान अवस्था तक पहुंचने की साधना है। परंतु मन और बुद्धि हर पल टांग अड़ाते रहते हैं। मन आपको कहता है कि तू धनपति है, तू एक नेता है, तू बुद्धिमान है, तू विद्वान है, तू ब्राह्मण है। तू और चींटी अथवा तू और कुत्ता सब एक समान कैसे हो सकते हैं?

इस ध्यान विधि की धारणा में मन के द्वार पैदा किए और पकड़े हुए अनेक प्रकार के अहंकारों को चोट पहुंचती है। दुनियाँ ने दिया हुए उधार मान-पान और नाम को चोट पहुंचती है। मन कहता है कि गधे को और खुद को एकरूप कैसे समझें! ऐसा करना तो गधापन है। परंतु ऐसा केवल आदमी का मन ही सोचता है गधे का नहीं। मैं कहती हूँ कि समभाव से हटकर द्वैत भाव में जीना ही गधापन है। इसे कौन समझे?

मैंने थोड़ी देर पहले ही कहा था कि कुछ विधियाँ परस्पर विरोधी लगती हैं परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रत्येक विधि स्वतंत्र है। एक दूसरे से विपरीत नहीं। ज्ञानमार्ग में एक दूसरे का सहयोग करके वे विधियाँ

परिरूर्णता की ओर ले जाती हैं। हाँ उन विधियों का तलस्पर्शी अभ्यास और अनुभव करना जरूरी है।

यहाँ थोड़ी देर पहले ही एक विधि की मैंने बात बताई। विधियों को याद रखने के लिए मैंने उनका नामकरण किया है। दोस्तों! चिन्मय भाव ध्यान में मैं और समग्र विश्व ब्रह्मरूप हूँ ऐसी धारणा करना है। परंतु संभव है कि साधक जब स्वयं को और विश्व को चिन्मय रूप मानने लगे तब अन्य भाव छूट जाए परंतु उसका मन ब्रह्म भाव को पकड़ ले और उसका अहंकार "मैं कुछ हूँ" पर अटक जाए।

मन का स्वभाव है कुछ न कुछ बात को पकड़ लेना और उसके द्वारा अपने अस्तित्व को बनाए रखना। दोस्तो! याद रहे परम ध्यान तो यही है जहाँ कुछ भी न बचे। इसलिए ही बुद्ध ने अनत्ता का चिंतन दिया है। कुछ लोग बुद्ध को नास्तिकवादी और निरिश्वरवादी कहते हैं। परंतु वास्तव में ऐसा नहीं है। बुद्ध ने मन का बहुत गहरा अभ्यास किया है। बुद्ध सजगता का साक्षात स्वरूप थे। उन्हें पता था कि मनुष्य का अहंकार किसी भी बहाने उसके भीतर प्रवेश करके उसे भटका देता है। और ये सारी चालबाजी मन की होती है इसलिए उन्होंने आत्मा का भी अस्वीकार कर दिया। ताकि मैं आत्मा हूँ, इस बात पर न मन चिटके और न ही अहंकार खड़ा रह पाए।

बौद्ध मत कहता है कि अगर मैं कुछ हूँ, तब मुझे इधर उधर का, यहां वहाँ का सबको उसका भय लग सकता है। परंतु मैं कुछ हूँ ही नहीं तो फिर कौन रहेगा भयभीत? अपनी आत्मा का स्वीकार करेंगे तो दूसरी आत्मा की भी बात उठेगी और यहाँ से मैं और तू के द्वंद्व का अथवा मेरे और तेरे का भाव शुरु होगा। अपने पराए का आरंभ होगा। राग द्वेष को

उत्पन्न होने का कारण मिलेगा। मन को भेद खड़े करने की जगह मिलेगी और दोष उत्पन्न होंगे।

परंतु दक्षिण तंत्र की मनीषी "अहं" शब्द की आध्यात्मिक व्याख्य ही करते हैं। अर्थात जो परम स्वतंत्र, दिव्य, विश्वोत्तीर्ण, और अक्षर तत्व है वही अहं है। जो विश्व के पार चला जाता है वहाँ दुन्यवी अहंकार के लिए जगह कैसी? केवल अहं तत्व का अर्थ यहाँ भी आप एक शुद्ध बुद्ध, चैतन्य और चिन्मय तत्व करेंगे। जब इस तत्व में धारणा स्थित होती है तो फिर भेद कैसा? भय कैसा? अज्ञान कैसा? और द्वंद्व कैसा?

प्यारे साधको!

जो चिन्मय है वह तो सर्वव्याप्त है। अर्थात मैं अर्थात अहं तत्व सर्व रूपों में बसा है। जो अनेक रूपों में होने पर भी एक ही है। जब इस भाव की दृढ़तापूर्ण प्रतीती हो जाती है तब मनुष्य की सोच ही बदल जाती है।

इस संसार में जब मनुष्य सोचता है कि मैं अकेला हूँ तब यह अहसास भी होता है कि मेरा कोई नहीं है, मेरी सहायता कौन करेगा? ऐसी ग्रंथि के कारण वह भयभीत रहता है। परंतु जब सोचे कि ये सारा संसार मेरा है, मेरा ही स्वरूप है। मैं अकेला तो बस रहा हूँ इस सारे संसार में। मुझसे कुछ भी भिन्न नहीं है। सबकुछ आत्मरूप है। तब वह निर्भय होकर विहार करता है।

प्यारे साधको!

इस प्रकार सर्वरूपोहं भाव ध्यान मनुष्य को एक उच्च कोटि की अवस्था में पहुंचाकर वास्तव में निर्भय करके जिसकी कोई उपमा नहीं दी जा सके ऐसे अध्यात्म सुख का अनुभव कराता है। यहाँ एक विशुद्ध

अहंताभाव काम करता है। और साधक पर आशीर्वाद बरसने लगते हैं। जिसके लिए शब्द छोटे पड़ जाते हैं। यह एक परम ज्ञानवस्था है।

इलम में बेज़ुबां हो जाते देखे अच्छो अच्छों को
बहुत शाने समझदारों को पागल होते देखा है

इलम को जान लेगा तब इलम तो जान ले लेगा
जो अटकी है यहाँ कुछ फालतू बेकार बातों में

प्यारे साधको!

यदि आपको यह ध्यान विधि जंच रही है तो निश्चय करो इस विधि में उतरने का। देखने में विधि आसान लगती है। परंतु सजगता हटते ही अहंकार ज़ोर पकड़ लेगा, मन हावी हो जाएगा इसलिए सावधान रहना।

दोस्तो, जब हम हाइवे पर जा रहे हैं तब एक छोटा सा गलत टर्न हमारी मंजिल से हमको बहुत दूर कर देता है। हमारा किया हुआ ड्राइविंग निरर्थक जाता है। वैसे ही ध्यान मार्ग में एक क्षण भी जाग्रति हटने से आपकी मंजिल आपसे दूर चले जाने की दुर्घटना घट सकती है। आपकी यात्रा गलत दिशा में होने लगती है। आप अपने लक्ष्य को चूक सकते हो। इसलिए फिर से कहती हूँ कि सावधान। घंटे दो घंटे के अभ्यास से नहीं चलेगा। इस विधि के लिए आपको समान गति से प्रतिपल सजग रहना पड़ेगा। ऐसे विषयों में मैं कई बार योगी जड़ भरत का दृष्टांत देती हूँ। ऐसे लोगों को दुनियां ने अकसर पागल कहा है। परंतु मैं कहती हूँ कि

अरे आवारगी का एक यह अनमोल तोहफा है
अगर मिल जाए तो वल्लाह, तेरी दुनियाँ बदल जाए।

हे साधक!

मैं भगवान की सौगंध खाकर कहती हूँ कि तुझे अगर साधना मार्ग में प्रगति करते करते पागल का खिताब मिल जाए तो तू उसे अनमोल तोहफा समझना क्योंकि बादमें तेरी दुनियाँ बदल जाएगी।

योगी भरत जब चलते थे तब उछलते कूदते हुए चलते थे इसलिए लोगों ने उसे पागल मान लिया। क्योंकि सामान्य मनुष्य की तरह उसने बाहर से ऐसी सभ्यता नहीं ओढ़ रखी थी कि जिसमें हिंसा भी हो और आदमी सभ्य भी दिखे। ज्ञानी पुरुषों में अकसर ऐसी चालाकी नहीं होती। ज्ञानी तो फिर से बच्चे जैसा बन जाते हैं। ज्ञानी ही ब्राह्मण है, द्विज है, वह फिर से जन्म चुका होता है और ज्ञान से पुनर्जन्म पा लेने के बाद वह दुनिया की नज़रों में और व्यवहार में बिलकुल बदल जाते हैं।

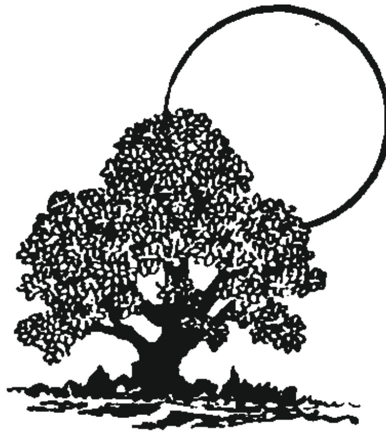
इलम देगा जन्म फिर से तेरी मासूमियत को सुन
तेरे सीखे को अनसीखा घड़ी में इल्म कर देगा।

योगी भरत को अहिंसा युक्त पागलपन मंजूर था परंतु हिंसापूर्ण सभ्यता नहीं। छोटे छोटे कीड़ी मकोड़े जैसे जीव उसके पैरों तले कुचल जाए वह उसे मंजूर नहीं था। मैं कहूंगी कि सर्वरूपोहम् भाव ध्यान में उसका प्रवेश हो गया था। कीट पतंग, पशु–पंछी, और मुझमें समान चेतना बह रही है – इस रहस्य को वे जान चुके थे। जो खुद को या वृक्ष तक को खरोंच पहुंचाना समान मानते थे। औरों की पीड़ा को स्वयं में अनुभव करते थे। अन्य की चेतना को स्वयं में बहते देखते थे। चेतना के स्तर पर उसका जीव प्राणी मात्र के साथ तदात्म्य हो गया था।

तेरा दिल जब बनेगा इल्म का एक आशियाना तब
पूरी दुनिया वो छोटी सी जगह में झूम उठेगी

प्यारे भक्तो!

तो अब आरंभ करो, तीव्र भाव करो कि सर्वत्र सर्व जीवों में आप ही हैं और सर्व जीव आपमें ही बसे हैं। आपसे कुछ भी भिन्न नहीं है। इस धारणा के द्वारा ध्यान की गहराईयों में उतरते उतरते एक अवर्णनीय सत्य का अनुभव कर लो।





धारणा - 113

सर्वव्यापकता भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 113

पुनि जल थल में अरु कण कण में, जड़ चेतन में ज्ञान में मन में।
सर्व व्याप्त सर्वेश्वर स्वामी, प्रगटे शिव सदा निष्कामी।।

ध्यान विधि - 113

भीतर और बाहर हर जगह पर सर्वेश्वर व्याप्त है, ऐसा बोध जगने से आपमें निष्काम शिव प्रगट हो जाएगा ।



विश्व को इतनी सजगता से देखो और भाव करो कि जल स्थल, आकाश और कण कण में, जड़ में और चेतन में, ज्ञान में और अज्ञान में केवल परमेश्वर का वास है। उस चैतन्य की शक्ति का ही यह सब परिणाम है। यह सर्वेश्वर समग्र ब्रह्मांड में सचराचर में व्याप्त है।

प्रिय साधको!

सर्वरूपोहम् भाव ध्यान मानो पूर्ण ज्ञानावस्था की प्रथम सीढ़ी है तो सर्वव्यापकता भाव ध्यान अंतिम सोपान। विधि कहती है कि जीव प्राणी मात्र में सूक्ष्म अभिन्नता प्राप्त करने के बाद ध्यान को उस हद तक पहुंचाओ कि आपकी चेतना सर्वव्यापी बन जाए अर्थात जगत के सभी पदार्थ सर्वात्मरूप हैं ऐसा समझो। तीव्र भाव से इस सत्य का स्वीकार करो कि जड़-चेतन, जल-थल आदि सभी स्थानों में केवल चैतन्य का वास है। मुझ समेत समग्र सृष्टि शिव रूप से पूर्ण है। और इस धारणा को तीव्र बनाकर पूरी सृष्टि का स्वयं में अनुभव करो।

दोस्तो, मन का स्वभाव है कि किसी भी विषय अथवा वस्तु को देखकर विषयी के रूप में उसके साथ तदात्म्य कर लेता है। और वहाँ से समस्याएं एवं बंधनों का आरंभ होता है। बंधन मनुष्य को सुख और दुःख दोनों का अनुभव करा सकता है। बंधन किस प्रकार का है उसपर सुख-दुःख निर्भर है।

कुछ बंधन सुंदर, आकर्षक और मुलायम विषयों के द्वारा पैदा होते हैं। जो सोने की जंजीर की भांति मूल्यवान लगते हैं और कुछ विषय लोहे की जंजीरों से बंधन पैदा करते हैं।

यहाँ शिव कहना चाहते हैं कि विश्व को इतनी सजगता से देखो और भाव करो कि जल स्थल, आकाश और कण कण में, जड़ में और चेतन में, ज्ञान में और अज्ञान में केवल परमेश्वर का वास है। उस चैतन्य की शक्ति का ही यह सब परिणाम है। यह सर्वेश्वर समग्र ब्रह्मांड में सचराचर में व्याप्त है।

दोस्तो, ऐसा तीव्र भाव करने से इस भाव की दृढ़ता हो जाती है और साधक के मन में निष्काम शिवत्व का अनुभव होता है।

बात समझने योग्य है। शिवत्व का अनुभव होने से या प्रगट होने से ऐसा अर्थ मत लगा लेना कि कोई देव बाहर से आकर साधक में प्रवेश कर लेगा। ऐसा कभी नहीं हो सकता। अगर आपने ऐसा अर्थ लगा लिया तो वह तो अंधश्रद्धालुओं या ढोंगियों जैसी बात हो जाएगी।

प्यारे साधको!

समग्र विश्व की यह वास्तविकता है कि शिव की शक्ति के स्पंदनों से ही जड़ चेतन सब अपना अपना कार्य एक कठपुतली की तरह कर रहे हैं। वह शिव ही शक्ति, और शक्ति ही शिव है। साम्प्रदायिक व्याख्याओं ने शिव-शक्ति को भी भिन्न रूप से समझाने का प्रयत्न किया है। और संप्रदायों की भिन्नता ने ईश्वरीय शक्ति को विविध नाम देकर शिवत्व के भी टुकड़े कर दिए हैं।

परंतु यह सब साधारण मनुष्य की बातें हैं। वास्तव में शिव एक परम चैतन्य शक्ति ही है। शिव शक्ति दोनों अभिन्न हैं।

शिव–शक्ति दोनों प्राण और श्वसन, रक्त और लालिमा, पुष्प और सुवास, वृक्ष और हरेपन तथा जल और तरंग की तरह हमेशा अभिन्न हैं। उन्हें अलग करने का कोई उपाय नहीं है। कुछ विषयों में शक्ति (एनर्जी) प्राधान नज़र आता है तो कुछ विषयों में शिव (प्योर नोलेज) केन्द्र में होता है।

प्यारे भक्तों!

मूल में तो संपूर्ण जगत एक ही ऊर्जा की छत्रछाया में प्रवृतिशील है। उससे मैं, आप, कीट, पतंग और जड़–चेतन जगत कोई भी अछूता नहीं है। इस ऊर्जा के बिना जीव क्रियाशील ही नहीं रह सकता। ऊर्जा और ज्ञान के बिना सृष्टि की संभावना ही मिट जाती है।

तो अब इन सारी बातों को सूक्ष्मता से समझकर साधक ऐसा भाव करे कि अगर वह शिव मुझमें है तो फिर एक अर्थ में मैं ही सर्वव्यापी हूँ।

प्यारे साधको!

आप इस सत्य का स्वीकार करें या ना करें परंतु मैं कहती हूँ कि आप सर्वव्यापी हैं। आपको पता नहीं है यह बात अलग है। यह ध्यान विधि तो आपको सत्य के प्रति केवल सजग करती है। आप विधि में उतर पाओ, न उतर पाओ, समझ की उच्चतम अवस्था तक पहुंच पाओ, न पहुँच पाओ अथवा पहुँचना चाहो कि ना चाहो यह दूसरी बात है परंतु वास्तव में केवल आप नहीं प्रत्येक जीव प्राणी और जड़ चेतन सर्वव्यापी है। कैसे?

ज़रा ध्यान से समझें। आप आपको पंचमहाभूत समझ लें। अर्थात ऐसा मानो कि मेरा शरीर अग्नि वायु आकाश पृथ्वी और जल का जोड़ है। तो यह एक परम सत्य है। आप उन पदार्थों से भिन्न नहीं हैं और वे पदार्थ आपसे भिन्न नहीं हैं। आप ऐसा समझो कि मैं स्वयं आकाश वायु जल अग्नि और पृथ्वी हूँ तो भी सत्य है क्योंकि अंश रूप से आप पंचमहाभूत रचित ब्रह्मांड में बसे हो और पंचमहाभूत आप में। आप उन पदार्थों से भिन्न नहीं हो और वे पदार्थ आपसे।

प्यारे साधको!

अगर आप ऐसा समझो कि मैं तो शुद्ध, बुद्ध आत्म स्वरूप हूँ तो फिर तो बात बहुत सरल हो जाता है। कयोकि उस चैतन्य शक्ति से तो सृष्टि चल रही है। चैतन्य सृष्टि से भिन्न नहीं और आप उस चैतन्य से भिन्न नहीं। अर्थात आप पूरे संसार से अभिन्न हैं।

प्यारे भक्तो!

संसार का अर्थ मैं यहां समग्र सृष्टि के अर्थ में ले रही हूँ। उसे आप अपने संसार के अर्थ में मत लेना। अगर आप इतना समझ गए कि मैं चिरंतन, चिन्मय और ज्ञान स्वरूप परमात्मा ही हूँ वह परमात्मा मुझसे भिन्न नहीं है। तो आप बन गए विश्वनियंता। आप हो गए सर्वात्म।

प्यारे साधको!

सर्वात्म शब्द भी शिव और शक्ति का एक नाम है। अगर आप सर्वात्म हैं, सबमें बसे हैं तो सर्वव्यापी भी हैं। ओम्नीप्रेज़ेन्ट हैं। फिर आपमें और परमात्मा में कोई फर्क नहीं। बल्कि आप तो परमात्म से भी

विशेष स्पष्ट रूप में दिखाई दे रहे हैं। परमात्मा तो छिपकर लीला चला रहे हैं। आप तो प्रगट हो, साकार हो, प्रत्यक्ष हो।

प्यारे दोस्तो!

हमारे मनीषी प्रमुख तीन मार्ग प्रदर्शित करते हैं। ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग। भक्ति मार्गी संत कहते हैं कि ईश्वर तो कण कण में है और हम उस सर्व व्यापी ईश्वर की उपासना करते हैं।

जैसे तुलसी ने कहा –

आकर चारीलाख चौरासी जाति जीव जल थल नभ वासी

सियाराम मय सब जग जानि करहुं प्रनाम जोरि जुग पानी।

– मैं जलचर, नभचर, और अनेक प्रकार के पृथ्वी पर विचरने वाले जीवों को सीताराम का स्वरूप मानकर वंदन करता हूँ।

दोस्तो, तुलसी ऐसा क्यों कहते हैं? क्योंकि उसका मार्ग वंदन का है, भक्ति का है, झुकने का है। पंरतु एक बात का स्वीकार तो समान रूप से सब कर रहे हैं कि अखिल विश्व में वह परमात्मा ही बस रहे हैं। फिर उन्हें झुको कि स्वयं में उसका दर्शन करके झूमकर कहो कि मैं वही हूँ। वह मुझसे जुदा नहीं है। तो विश्व से भी जुदा नहीं है।

वह विश्व में बसा है तो मैं भी बसा हूँ। मेरी वजह से उसका वजूद है, और उसकी वजह से मेरा। दोस्तों यह ज्ञानी की भाषा है। क्योंकि ज्ञानी समझता है कि उसके सिवाय कुछ भी नहीं है और मैं वही हूँ। उसके सिवाय जो कुछ भी है वह तो संसार है। संसार का अर्थ है जो आपकी पकड़ में हमेशा नहीं रह सकता। हाँ, उस संसार का अस्तित्व उसके कारण है। यह एक मात्र संसार का परम सत्य है। जो मुझमें बसा है। और इस सत्य के अनुसार मैं सर्वव्यापी हूँ।

हूँ हिमाला बर्फ हूँ बुलंदी हूँ
ढूंढ ना पाओगे पर कोई पत्थर

प्यारे भक्तो!

यहाँ किसी भी प्रकार की पूर्व धारणा से नहीं चलेगा। यहाँ सत्य की एक चरम सीमा है। पाप बोध से भरा हुआ मन मैं सर्वव्यापी परमात्मा हूँ ऐसा भाव नहीं कर सकता। तथाकथित धार्मिकता से संस्कारित किया हुआ आपका मन अपराध भाव से भरा हुआ है अथवा तो आपके तथाकथित गुरुओं ने आपके मन को अपराध भाव से भर दिया है। जैसे कि तू पापी है, तू अपराधी है, तू ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करता, तू दान पुण्य से धन की शुद्धि नहीं करता।

ये सारी बातें आपके भीतर घर कर बैठी हैं। मैं तो क्या एक हजार शिव के समझाने पर भी आप उन धार्मिक लघुताग्रंथियों के पार नहीं जा सकते हो। कुछ बातें ऐसी हैं कि जिसे मनुष्य को समझाने में समझाने वाले की कसौटी हो जाती है।

मैं कहूँगी कि हिमालय भी आप हो, कैलास भी आप हो, गंगा भी आप हो, और मानसरोवर भी आप हो। तो आप घबरा जाएंगे और कहेंगे कि नहीं नहीं माफ करो मुझे संशय में मत डालो। मैं दो टाईम दिया बाती करता हूं और मंदिर जा लेता हूँ इतना काफी है। मुझे उल्झाओ मत।

गलत धार्मिक मान्यताओं के कारण कितना संकुचित हो गया है मनुष्य। कितने संकुचित हो गए हैं आपके परमात्मा। दोस्तो, मैं उलझा नहीं रही हूँ। बात तो असल में सुलझाने की है परंतु गुत्थियाँ ही जिसका जीवन बन गया है, वह सीधी सपाट और स्पष्ट बातों से घबरा जाता है।

इसलिए इस ध्यान विधि में प्रवेश करने के लिए सबसे पहले तो आपको झूठी धर्म ग्रंथियों से अपराधभाव से और पुराने संस्कारों से मुक्त होनो पड़ेगा। मन की सारी कुंठाओं से मुक्त होना पड़ेगा। आत्म वंचना भी नहीं, आत्मश्लाघा भी नहीं केवल सत्य का आराधन।

पहले आपको यह साहस दिखाना पड़ेगा, यह कला सीखनी पड़ेगी। पारंपरिक सांप्रदायिक शिक्षा कि जिससे आप संकुचित हो गए हो उसके पार जाना पड़ेगा और एक नया तरोताज़ा मानस तैयार करने के लिए एकांत, मौन और ध्यान में उतरना पड़ेगा।

इलम मजहब की दीवारें गिराकर महक उठता है
अगर है तिश्नगी तो आग को पीकर तू ठंडा कर।

दोस्तो! तिश्नगी का अर्थ है प्यास। आग पीकर कभी प्यास बुझती है? परंतु ज्ञान मार्ग में ऐसा होता है।

इलम तो दो ही कल को एक ही पल में मिटा देगा
सजाएगा वो तेरे आज को ऐलान तू कर दे।

प्यारे भक्तो!

ज्ञान का जन्म होते ही अतीत और भविष्य दोनों एकसाथ मिट जाते हैं और केवल एक अद्‌भुत वर्तमान बना रहता है।

दोस्तो, अगर हिम्मत है तो ऐलान कर दो कि मैं शिव हूँ, मैं परमात्मा हूँ, सर्वव्यापी हूँ, जड़-चेतन में समान रूप से बसा हूँ, सर्वश्रेष्ठ हूँ। कृष्ण में ऐसी हिम्मत थी तब तो गीता का विभूति योग अस्तित्व में आया। परंतु वह एक हद पर अटक गया है। वह कहता है कि जो जो श्रेष्ठ है तेजस्वी है, विभूतिवान है, मैं वहाँ बसा हूँ। वह पशुओं में सिंह है लोमड़ी नहीं, मनुष्यों में राजा बनता है चांडाल नहीं। क्यों? क्योंकि

प्रारंभ में वह मनुष्य को महानता की धारणा देना चाहते हैं। परंतु अंत में तो अर्जुन विराट रूप के दर्शन के बाद ही गांडीव उठाता है। पहले वह विराट रूप को देखकर भले घबरा गया परंतु बाद में उसे पता चल गया कि केवल कृष्ण नहीं मैं भी विराट हूँ। और इस साहस में से गांडीव का टंकार हुआ।

प्यारे भक्तों!

इसलिए तो उन दोनों को नर–नारायण अवतार कहा। मैं कहती हूँ कि कृष्ण ही अवतार नहीं अर्जुन भी अवतार है, आप भी अवतार हैं। केवल कृष्ण ही भगवान नहीं आप भी भगवान हैं।

यह केवल पूर्व के मनीषी ही नहीं परंतु पूरे विश्व के ज्ञानी पुरुषों की घोषणा है। मन्सूर भी यही कह रहा था परंतु उसके हाथ में सत्ता नहीं थी। तो लोग नहीं समझे। सत्ता का भी एक असर होता है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, सब राजकुमार थे। उनके उपदेश का असर लोगों पर जल्दी पड़ा क्योंकि बड़े लोग थे ना। लोगों की दृष्टि भी कितनी विचित्र है। उपनिषद् भी यही कह रहे हैं।

दोस्तों,

प्रज्ञानम् ब्रह्म, तत्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म और अहं ब्रह्मास्मि चारों वेद के ये चार महावाक्य क्या कहते हैं? चारों वेद भिन्न भिन्न शब्दों में एक ही बात कर रहे हैं। और सभी ज्ञानी जन भी इसी बात को दोहरा रहे हैं। अगर आदमी समझ सके तो।

प्यारे भक्तो!

हमारे मनीषि धरती पर ही स्वर्ग बसाना चाहते थे। परंतु लोगों को दुःख ही मंज़ूर है। उन्हें नर्क चाहिए, उन्हें पीड़ित होना ही है। सत्य कठिन और असत लगता है। असत सत लगता है। झूठ और बनावट मूढता और अहंकार का परिणाम है, राग द्वेष मनोग्रंथि का। परंतु ग्रंथियाँ छोड़ती ही नहीं है उन्हें! और मनुष्य बेचारा हो जाता है। उन बेचारे लोगों को जगाने के लिए फिर फिर के किसी न किसी ऊर्जा, किसी न किसी रूप में धरती पर उतर कर एक ही सत्य को बार बार उजागर करने का प्रयास करती रही है।

अगर आपने शिवपुराण पढ़ा हो तो पता होगा कि उसमें सर्व देव शिव की स्तुति करते हुए कहते हैं कि आप उत्तम ग्रह, उत्तम नक्षत्र, उत्तम वृक्ष, उत्तम मनुष्य, उत्तम तिथि, उत्तम योग, उत्तम वार इत्यादि हो। यह स्तुति क्या बताती है? यह परमात्मा की सर्वव्यापकता का स्वीकार है। मैं कहती हूँ कि आप भी उत्तम हैं, वह परमात्मा आपसे भिन्न नहीं है।

प्यारे भक्तो!

विधि में स्वयं शिव कहते हैं कि मैं केवल उत्तम में नहीं अधम में भी बसता हूँ। केवल चेतन में नहीं जड़ में भी हूँ। इसे तो सर्वव्यापी कहते हैं। अधमता और उत्तमता तो उपरी स्तर की गुणवत्ता का नाम है। गहराई में तो सिर्फ परमात्मा ही है। इसलिए तो ईश्वर को निर्गुण कहा है।

शिव कहते हैं कि तुझे ऐसी धारणा करनी है कि तू भी सर्वव्यापी है।

प्यारे साधको!

उत्तमता और अधमता तो ऊपर ऊपर की बातें हैं। ऊपर की बातों को इतना महत्व मत देना कि मनुष्य छोटा बन जाए। गुण अथवा अवगुण तो माहौल, रक्त, सोच और मन के संस्कार का प्रभाव है। वास्तविक तो केवल चैतन्य ही है।

तो चलो साधको!

इतने सत्संग से अगर आपको कुछ किरणें मिली हों तो आरंभ करो सर्वव्यापकता भाव ध्यान का। विश्व की प्रत्येक वस्तु और व्यक्ति में स्वयं का दर्शन करो। एक बार करके तो देखो। आपको जब झलक मिलेगी तो आप बादशाहों के बादशाह हो जाएंगे। आपको अनुभूति होगी कि आप कल्याण रूप और कल्याण के दाता हैं। परंतु हाँ जल्दी मत करना। परिणाम के लालाच से ध्यान मत करना। शीघ्रता से सफलता नहीं भी मिल सकती है। धैर्य के साथ समग्र भाव से डूबते रहो सर्वव्यापकता भाव में। कोई भिन्न नहीं है, कोई अन्य नहीं है। मैं क्या हूँ? कौन हूँ? – मैं व्यक्ति नहीं, नाम नहीं, रूप नहीं, गुण नहीं, पद–प्रतिष्ठा नहीं; मैं तो सर्वव्यापी परमात्मा हूँ।

दोस्तो, यह भाव आपको निष्काम और पूर्णता से भर देगा। इस भाव से आप अपरिसीम तृप्ति का अनुभव करेंगे।



धारणा - 114

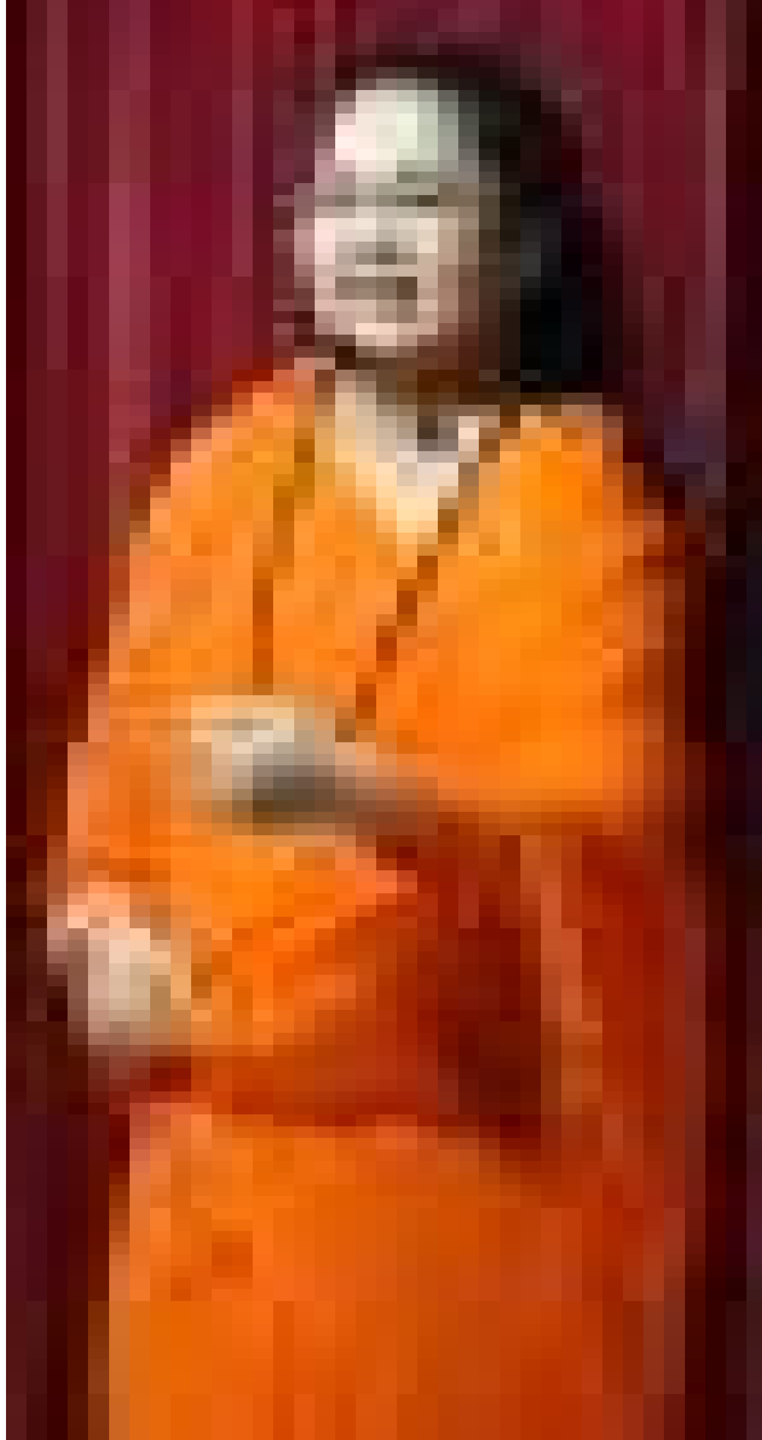
ग्राह्य-ग्राहकमुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 114

सावधान रहीं साधक समझे, ग्राहक ग्राह्य स्वरूप को बूझे।
सदा स्मरण राखे रस लीना, मुझ से सर्व पदार्थ है भिन्ना।
चित्त स्वरूप नहीं विस्मृत होइ, नित्य अनित्य को समझे सोइ।

ध्यान विधि - 114

दुनियावी क्रियाओं में सजग रहकर, अपने विशुद्ध स्वरूप का स्मरण रखकर बस अज्ञात में रसलीन रहो ।



अब थोड़ी सजगता के साथ बात को समझना। ग्राहक की ग्राह्य पदार्थ के साथ आसक्ति हो सकती है अथवा ग्राह्य पदार्थ को लेकर उसकी प्राप्ति में हर्ष अथवा अप्राप्ति में असंतोष, शोक अथवा राग-द्वेष उत्पन्न हो सकते हैं। तो क्या करें? आदान प्रदान तो अनिवार्य है। जड़-चेतन सभी परस्पर आदान प्रदान कर रहे हैं। कभी ग्राह्य ग्राहक बनता है तो कभी ग्राहक ग्राह्य। इसके सिवाय जीवन का अस्तित्व ही नहीं।

प्रिय साधको!

पुरातन विधियों को जब आज के युग में आपके सामने मुझे रखनी है तब कितनी भी कोशिश करने पर भी कभी कभी भाषा का बंधन मुझे बांध लेता है। वह प्राचीन तंत्र ग्रंथ और ध्यान ग्रंथों के कुछ शब्द इतने प्रबल हैं कि चाहने पर भी उन्हें हटाने का मन नहीं होता। और साधारण मनुष्य उन्हें समझ नहीं सकता। क्योंकि कुछ खास शब्दों को हटाने से पूरी बात का अर्थ मारा जाता है। तब मुझे लगता है कि उन शब्दों को "जैसे थे" वैसे ही रखना पड़ेगा। मुझे विवरण करने में भले थोड़ा समय लगे, श्रम पड़े, आपको भी बात समझने में थोड़ी कठिनाई का अनुभव हो परंतु आखिर वही शब्द आपकी मदद कर जाएगा।

मेरा अनुभव है कि आप शब्द को जब प्रेम करने लगते हैं उसके अर्थ में उतरने का प्रयत्न करते हैं बार बार उसमें झांककर मनन चिंतन करते हो तो आपके भीतर अचानक एक घटना घटित होती है। यह घटना है अर्थ को समझने की। तो अचानक अर्थ समझ में कैसे आ गया? शब्द से तो परिचय नहीं था, भाषा का ज्ञान नहीं था, फिर भी यह कैसे हुआ?

आपका मन भी आश्चर्य से भर जाएगा परंतु मेरे चालीस वर्ष के अध्ययन के बाद में कह सकती हूँ कि बचपन से लेकर आजतक मेरे साथ कई बार हुआ है कि जितने कठिन शब्द मैं नहीं समझ सकती थी कभी कभी शब्द कोष से भी मदद नहीं मिल पाती थी, न कोई विद्वान पुरुष मदद कर सकते थे; कुछ तथाकथित विद्वानों को पूछने पर मेरा अनुभव ऐसा रहा है कि उनको जो बोलना है वही बोलते रहते हैं। सामने वाले की समस्या क्या है? अथवा वह क्या जानना चाहता है? उस बात के प्रति वे लक्ष्य ही नहीं देते। ऐसे तथाकथित पंडितों को मौका मिल जाता है कि चलो एक अध्ययनशील व्यक्ति हाथ लगी है तो चलो आज मनभर के उपदेश कर लें। वे उनके मन की भड़ास निकाल देते हैं। ऐसे किस्से में समय बरबाद और दिमाग खराब करने के बाद बोध होता है कि एक सही शब्द का मर्म जानना चाहते थे वह तो नहीं मिला परंतु कितना निरर्थक और अनर्गल प्रलाप सुनना पड़ा! खैर, गलती हमारी है तो हम ही भुगतेंगे! आखिर पूछने हम ही तो गए थे। मेरे साथ कई बार ऐसा हुआ है। फिर मैंने एक प्रण किया कि जब तक सामने वाला अध्ययनशील के साथ साथ आध्यात्मिक एक्सपर्ट न हो तब तक प्रश्न नहीं करना है। कोरे पोथी पंडितों से सर नहीं खपाना है।

प्यारे साधको!

यह बात मैं क्यों कर रही हूँ? यह बात इसलिए कर रही हूँ कि भाषा का स्वरूप, उत्पत्ति, विविध मत, धातु और विभक्ति आदि बता सकते हैं परंतु शब्द के मर्म को नहीं जान पाते। ऐसों को हम यह भी नहीं कह सकते हैं कि आपसे पूछा यह मेरी गलती हो गई। हम शब्द के जाल को नहीं जानना चाहते हैं, हम तो मर्म को जानना चाहते हैं। क्योंकि पूछने

हम गए थे। कभी कभी एक ग़लती अनेक ग़लतियों को दोहराती है और हम शिकार बने जाते हैं। फिर भी कौन से अर्थ में और संदर्भ में शब्द का उपयोग हुआ है इसका तो पता ही नहीं चलता। खैर!

मैं यह कहना चाहती हूँ कि इन ध्यान विधियों को जो आप पढ़ें तो आपके साथ भी ऐसा हो सकता है। मेरा प्रत्यक्ष सानिध्य सबको प्राप्त होना सबको संभव नहीं है। यहाँ मुझे अनिवार्य रूप से कुछ यौगिक, तांत्रिक और ध्यान मार्ग की पारिभाषिक शब्दावली को लेना ही पड़ा है।

काफी कोशिस करती हूं कि उन शब्दों के स्थान पर कुछ अन्य शब्द रखूं। परंतु ऐसा करने से पूरी बात बदल जाती है। और ऐसा न हो इसलिए मेरे हाथ बंधे हुए रहते हैं। कुछ शब्द ऐसे हैं कि उन्हें उसके असल और गूढ रूप में ही रखने पड़ते हैं। ताकि बात का मज़ा न बिगड़ जाए। कुछ शब्दों को पर्यायवाची शब्द मिलते हैं परंतु वे उतने बलवत्तर नहीं है जितना मूल शब्द। तो दोस्तो ऐसे कुछ शब्दों को नहीं हटा पाए हैं।

प्यारे साधको!

अगर कोई बात समझने में ना आए तो मैं कहती हूँ कि इस सत्संग को बार बार पढ़ना, अनेक बार पढ़ना, शुद्ध और शांत चित्त से पढ़ना, बुद्धि की कसौटी पर मत चढ़ाना, पांडित्य में मत उलझना; सरलता से शब्द को समर्पित होकर अपनी सारी चेतना उसके प्रति मोड़ देना। शब्द स्वयं आपको अर्थ देगा, आपका जवाब देगा। यह मेरा अनुभव है।

प्यारे साधको!

अब आईए विधि की ओर। पहले विधि के नाम को समझिए। हाँ, यहाँ मुझे एक और बात को भी स्पष्ट करना है। शिव ने विज्ञान भैरव तंत्र

में ११२ विधि दीं परंतु एक भी विधि का नाम नहीं दिया। क्यों? शिव ऐसा कर सकते थे। उनके सामने सती पार्वती बैठी थी। एक विदुषी बैठी थी। उपरांत निरंतर शिव का प्रेमपूर्ण और आध्यात्मिक सानिध्य उन्हें प्राप्त हो रहा था। किसी भी संशय को वह कभी-कभी जिज्ञासु भाव से प्रश्न कर सकती थीं। परंतु मेरे सामने एक मिलाजुला समाज है। उस समाज में अनेक प्रकार के लोग हैं। सब चाहते हैं ध्यान में उतरना, परंतु विधि के नाम दिए बिना वे उलझन में पड़ जाएंगे। कैसे याद रखेंगे वे विधि को? व्याख्याएं तो लंबी हो जाती हैं और उलझा भी सकती हैं। ऐसी स्थिति में मुझे लगा कि विधि के लिए एक ऐसे शब्द की जरूरत है जिसे पढ़कर ही साधक को पूरी विधि का स्मरण हो जाए कि उसमें कैसे उतरना है?

अगर नामकरण नहीं हुआ तो साधक को क्या करना है? कौन सी विधि का अभ्यास करना वह कैसे याद रहेगा?

आज के मनुष्य की स्मरण शक्ति भी टेक्नोलोजी के विकास के कारण कम होती जा रही है। आज दिमाग की जगह सबकुछ कम्प्यूटर याद रखता है। और वैसे भी अध्यात्म मार्ग में मनुष्य ज्यादा प्रमाद कर रहा है। इसीलिए तो ऋषियों को बार बार कहना पड़ा कि प्रमाद छोड़ो। आलस मनुष्य का महाशत्रु है इत्यादि।

खैर! मैं विधि के शीर्षक के नाम के बारे में कुछ बात करने जा रही हूँ। दोस्तो, ध्यान मार्ग की खूबी यह है कि विधि तो छोटी होती है परंतु अभ्यास लंबा। कभी कभी विधि का नाम समझ में न आने से कुछ साधक उसे पढ़ने का उसका अभ्यास करने का या समझने का प्रयास नहीं करता। केवल भाषा समझ में न आने से अथवा भारी भरखम नाम से डरकर

विधि को ही छोड़ देता है। ऐसा न हो इसलिए मेरे लिए अनिवार्य हो जाता है विधि को नाम देना।

ज्यादातर तो नाम के द्वारा ही विधि के विधान का पता चल जाता है कि इसमें से कैसे गुजरना है।

प्यारे साधको!

अब हम जिस विधि की ओर जा रहे हैं; उस विधि का नाम है– ग्राह्य–ग्राहक भाव मुक्ति। नाम ज़रा भारी लगता है ना! लेकिन घबराना नहीं विधि को छोड़ मत देना। कम से कम एक बार पढ़ जरूर लेना। संभव है कि विधि सरल भी निकले।

प्यारे साधको!

ग्राह्य का अर्थ है – जो वस्तु ग्रहण हो सकती है अथवा ग्रही जाती है। और ग्राहक का अर्थ है जिसके द्वारा वस्तु स्वीकारी जाती है। लौकिक व्यवहार निभाने के लिए यह संबंध अनिवार्य रूप से जुड़ता है। जैसे कि भोजन ग्रांह्य है (स्वीकारा जाता है, ग्रहण किया जाता है) और भोजन करने वाला ग्राहक है (जो स्वीकार करता है, ग्रहण करता है)।

आज के युग में भाषा बदल जाने के कारण लोग ग्राहक का अर्थ केवल खरीददार ऐसा ही कर लेते हैं। परंतु यहाँ एक विशाल लौकिक व्यवहार और प्रतिपल परस्पर आधारित समाज धर्म, देह धर्म और सहज धर्म आदि के संदर्भ में ग्राह्य और ग्राहक के सबंध को समझना है। जैसे प्यासा आदमी जल पीता है तो जल ग्राह्य है और पीने वाला ग्राहक है।

ध्यान विधि कहती है कि यह व्यवहार तो जहां तक जीवन और शरीर का अस्तित्व है तब तक सबके लिए अनिवार्य है। बुद्ध और महावीर

जैसों के लिए ग्राह्य और ग्राहकता तो रहती है और यही व्यवहार अथवा क्रिया अथवा अनिवार्यता बंधन का, मोह का, अथवा राग–द्वेष का कारण भी बन सकती है।

अब थोड़ी सजगता के साथ बात को समझना। ग्राहक की ग्राह्य पदार्थ के साथ आसक्ति हो सकती है अथवा ग्राह्य पदार्थ को लेकर उसकी प्राप्ति में हर्ष अथवा अप्राप्ति में असंतोष, शोक अथवा राग–द्वेष उत्पन्न हो सकते हैं। तो क्या करें? आदान प्रदान तो अनिवार्य है। जड़–चेतन सभी परस्पर आदान प्रदान कर रहे हैं। कभी ग्राह्य ग्राहक बनता है तो कभी ग्राहक ग्राह्य। इसके सिवाय जीवन का अस्तित्व ही नहीं।

आप मात्र श्वास भी लेंगे तो भी वहाँ ग्राह्य और ग्राहक का द्वैत तो आ ही जाता है। तो क्या उपाय है उसमें न बंधने का?

शिव कहते हैं कि सर्वदेहधारियों में ग्राह्य ग्राहक का संबंध या व्यवहार अथवा आदान प्रदान अनिवार्य है। परंतु ध्यानी और योगी को विशेष रूप से ऐसे संबंध में सावधानी बरतनी चाहिए। इतने में तो शिव ने बहुत कुछ कह दिया। एक इशारा ही काफी हो जाता है।

लौकिक लेन देन में कभी आप ग्राह्य बनते तो कभी आप ग्राहक। कभी आप किसी चीज़ या व्यक्ति को ग्रहण करते हो तो कभी आपको कोई और ग्रहण करता है। परंतु आपको जब ऐसी भूमिका अदा करनी पड़े तब आप विशेष रूप से सजग रहेंगे, सावधान रहेंगे। और सोचें कि ग्राह्य ग्राहक का आदान प्रदान भले चलता रहे परंतु – मैं ग्राह्य हूँ अथवा ग्राहक हूँ अथवा ग्राह्य वस्तु पर मेरा अधिकार है – ऐसे भाव को पकड़ना नहीं। सबकुछ लौकिक व्यवहार निभाते हुए भी सावधानी पूर्वक ग्राह्य ग्राहक भाव मुक्ति पर आपको ध्यान केन्द्रित किये रखना है।

खुद को ग्राह्य के रूप में बांधो न ग्राहक के रूप में। लेन देन भले चालू रखनी पड़े परंतु मैं लेने वाला हूँ या देने वाला हूँ या मुझे कोई ग्रहण करता है या मैं कुछ ग्रहण करता हूँ अथवा मुझे कुछ चाहिए ही और वह मुझे मिलना ही चाहिए। इस भाव से मुक्त हो जाओ।

लौकिक स्तर पर भले सब चलता रहे परंतु भीतर चौबीसों घंटे बोध जगाए रखो कि इस आदान प्रदान से बंधना नहीं है। मैं न ग्राह्य हूँ न ग्राहक। यह तो सब बाहर से चलता रहा है। मैं तो सत, चित, आनंद और सदामुक्त हूँ। न कर्ता हूँ ना भोक्ता। जो कुछ भी आदान प्रदान हो रहा है, मैं तो उसका साक्षी मात्र हूँ। यह सब तो अनित्य है। शाश्वत नहीं है। टाइमबीइग है। इस तरह ध्यान योगी सत-असत को विवेक जाग्रति के कारण ग्राह्य ग्राहक भाव से मुक्त होकर सदानंद में राचता है।





धारणा - 115

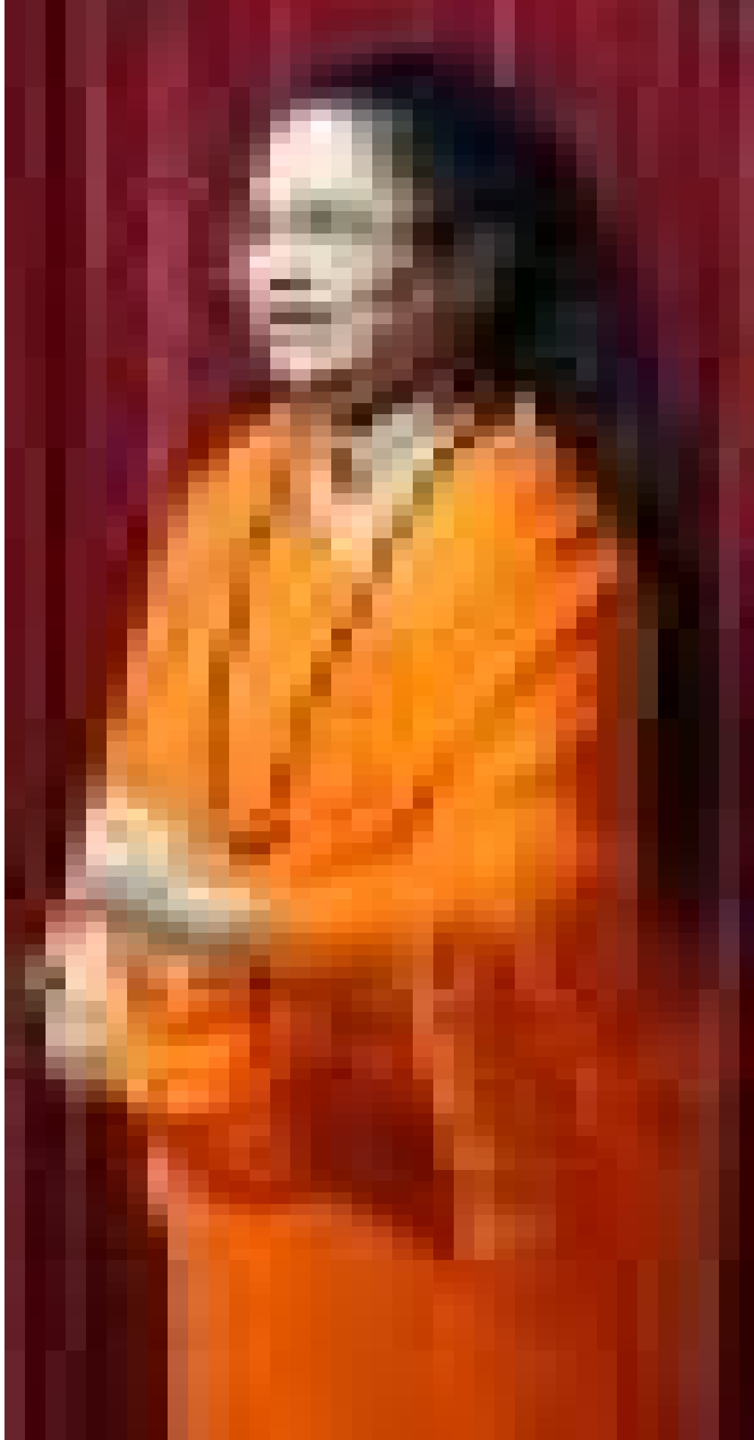
स्वावलंबन भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 115

आत्मस्वरूप सर्व शक्तिमाना, तेहि जानि साधक धरो ध्याना।
हे साधक ! सब मन के आधारा, आलंबन करो नष्ट अपारा।
पुनि एक विकल्प ही बचहीं, ते परमात्म रूप सब राचहीं।

ध्यान विधि - 115

अपने आत्मस्वरूप को सर्वशक्तिमान समझकर सारे बाहरी और मनोजगत के आधारों से मुक्त होकर बुद्धरूप में राचो ।



ध्यान विधि कहती है कि परस्पर के अवलंबन से ऊपर उठ जाओ। मतलब? गुलाम बनाने की और गुलाम बनने की वृत्ति से ऊपर उठ जाओ। मन को कोई आधार मत दो। किसी संकल्प विकल्प को अपने पास नहीं फड़कने दो। क्योंकि संकल्प विकल्प करते करते ही आपको मन पराधीन बना देता है। और आपको पता तक नहीं चलता।

प्रिय साधको!

एक छोटी सी परंतु बहुत प्यारी विधि की ओर हम जा रहे हैं। तंत्र मार्ग में अनेक उपोयों के द्वारा साधक विदेहावस्था में प्रवेश कर सकता है। इनमें से कुछ अनुपाय प्रक्रिया हैं जिनमें कोई खास प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। बिना किसी उपाय किये ही ज्ञान में प्रवेश कर लेना है। हम एक ऐसी ही विधि की ओर जा रहे हैं।

शिव कहते हैं कि हे सती! आंतरिक और बाहर के सभी मनोआधारों को छोड़कर मन को निराधार कर दो।

प्रिय साधको!

मन का स्वभाव है अवलंबित रहना और अवलंबित रखना। मन कहीं न कहीं चिटक जाता है। अवलंबन के बिना मन जी नहीं सकता। मन हजार हजार संकल्प विकल्प करके कुछ न कुछ आधारों को पकड़ लेता है। विषय के बिना मन का अस्तित्व नहीं है। वे विषय कभी आंतरिक होते हैं तो कभी बाह्य।

मन के पास कोई स्वयं बोध नहीं है। कुछ न कुछ पकड़ते रहना और दूसरों को कुछ न कुछ पकड़ाते रहना अर्थात बंधना और बांधना यह मन का स्वभाव है। मन हमेशा पराधीन है। वह परधीनता के कारण ही दुःख-सुख का कारण बनता है। परंतु परिणाम तो दुःख ही है। मन की पकड़ इतनी मूढतापूर्ण और मजबूत होती है कि आसानी से नहीं छूटती। समझ के अभाव में मन कुछ भी बोलता और करता रहता है।

मुझे एक किस्सा याद आ रहा है। मैं एक बार बचपन में मुसाफिरी कर रही थी। बस में कंडक्टर टिकट फाड़ने आया। जगह के अभाव में एक आदमी खड़ा था। उसने एक हाथ से अपना थैला पकड़ा था और दूसरे हाथ से बस का ऊपर का डंडा, कंडक्टर जब टिकट फाड़ने आया कि अरे भाई मेरे दोनों हाथ व्यस्त हैं। मैं जेब में से बटुआ कैसे निकालूं? हो सके तो तू मेरी थोड़ी मदद कर दे - या तो मेरा थैला पकड़ या डंडा पकड़, दो मैं से एक तो कर। ताकि मेरा हाथ खाली हो तो मैं तुझे टिकट का पैसा दे पाऊं। मुझे बहुत हंसी आई, यह है मन का स्वभाव।

आप ही सोचिए कंडक्टर थेला पकड़े तो फिर भी ठीक है परंतु बस का डंडा पकड़ने से क्या फायदा? यह मन का प्रतीक है। मन को बोध नहीं है कि क्या सार्थक? क्या निरर्थक? बंधना और बांधना मन का स्वभाव है। अवलंबित रखना और अवलंबित रहने में मन का अस्तित्व है। अर्थात दूसरों पर निर्भर रहना और दूसरों को अपने पर निर्भर रखने में मन को मज़ा आता है। वही उसकी खुराक है।

प्यारे साधको!

आप सजग रहना। सरकारी ऑफिसों में आप देखते होंगे। आपको कोई सरकारी कामकाज की जरूरत पड़ी तो आप जाते हैं रेवन्यू ऑफिस

में। वहाँ क्लर्क कुर्सी पर खाली बैठा है। उसके पास कुछ काम नहीं। आप जाकर रिक्वेस्ट करेंगे कि मेरे फलां फलां कुछ खास कागज़ निकाल दीजिए। वह आपको कहेगा कि कल आना। आज साब नहीं हैं। हकीकत में साब कुछ जानते ही नहीं हैं, साहब की कहीं जरूरत भी नहीं है। वह काम साहब का है ही नहीं। साहब तो एक बहाना है आपको अवलंबित रखने का। आपको पराधीन कर देने का।

कुछ लोग जवाब दे देते हैं कि आज कम्प्यूटर बिगड़ा हुआ है। कुछ लोग कह देते हैं – अब तो टाईम हो गया आज कुछ नहीं होगा। फिर कल, परसो, नरसों, अगला सप्ताह अगला महीना, अगली साल तक का समय बीत जाता है और काम नहीं होता। क्यों? क्योंकि मन।

दुनिया की कुर्सियों पर कोई साधक, कोई सुलझा हुआ, कोई जागा हुआ मनुष्य नहीं बैठा है। वहाँ तो मनुष्य के ढांचे में एक असंतुष्ट मन बैठा है।

कोई अवलंबित रहे तो मन का अहंकार पुष्ट होता है। कुछ लोग गुलाम होकर भी इस तरीके से खुश रहते हैं। क्योंकि बड़े बड़े साहबों को भी कुछ कागज़ों के लिए उसकी गुलामी करनी पड़ती है। नौकर जब लाए तब साहब पानी पीते हैं! नौकर जो लाकर दे तो साहब चाय पीते हैं! वह टेबल और ऑफिस साफ करे तब साहब ऑफिस में बैठ सकते हैं! कैसी मज़े की बात है! कि नौकर स्वयं अवलंबित होने पर भी वह मालिक को अवलंबित रखता है। किस हद तक मनुष्य ने पराधीनता की भी पराधीनता का स्वीकार कर रखा है! पराधीनता में भी कुछ लोगों का अहम् पुष्ट होता है। क्योंकि कहीं न कहीं तो नौकरों को भी उसकी जरूरत पड़ती है। कम से

कम महीने में एक बार – जो दिन तनख्वाह का होता है। खैर! ये सब मन की चालबाजियाँ हैं। उदाहरण तो बात को समझाने के लिए दे रही हूँ।

ध्यान विधि कहती है कि परस्पर के अवलंबन से ऊपर उठ जाओ। मतलब? गुलाम बनाने की और गुलाम बनने की वृत्ति से ऊपर उठ जाओ। मन को कोई आधार मत दो। किसी संकल्प विकल्प को अपने पास नहीं फड़कने दो। क्योंकि संकल्प विकल्प करते करते ही आपको मन पराधीन बना देता है। और आपको पता तक नहीं चलता।

आपका नहीं तो किसी और का मन आपको ऐसी टिप्स दे जाता है कि आप थोड़े से भी बेहोश रहो तो आपकी एक अंतहीन दौड़ शुरु हो जाती है।

प्यारे साधको!

पूरे पूरे सजग रहो। मन के प्रति सावधान रहो। यह ध्यान विधि बहुत प्यारी है। उतरो निरालंब धारणा में। अभ्यास पूर्ण हो जाने पर केवल परमात्म स्वरूप ही बचेगा।

अपार अवलंबनों में जीने की आदत छोड़ो। जाग जाओ। मन को आधार मत दो। और बात बात में मन का आधार लेने की आदत नष्ट कर दो। धीरे धीरे मन खो जाएगा। आप मुक्त हो जाएंगे।

एक संत अमरीका गए। वहाँ उसे भक्त लोग एक बहुत बड़े शोरूम में ले गए। जहाँ सुख वैभव के लिए हर प्रकार की चीजें उपलब्ध थीं। भक्तों ने कहा, महाराज इसमें से जो आपको पसंद आए वो खरीद लो। महात्मा ने कहा कि इस दुकान में ज्यादातर चीजें ऐसी हैं कि मुझे

जिंदगी में कभी भी उन चीजों की जरूरत नहीं पड़ सकती। दोस्तो, निरपेक्षता और स्वावलंबन का यह एक उत्तम उदाहरण है।

आहिस्ता आहिस्ता चलकर
हम पहुंचे हैं उनके दर पर
कोई बोझ नहीं अपने सर पर
क्योंकि हम ही अब रहे नहीं।।

दोस्तो! तो इस राह से ग्राह्य–ग्राहक मुक्ति भाव ध्यान में उतरकर मुक्ति का आनंद ले लो।





धारणा - 116

सर्वशक्तिमान भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 116

मैं सर्वज्ञ सब कर्ता व्यापक, शुद्ध बोध स्वरूप संस्थापक।
दृढ चित्त से साधक ध्यावे, तब ते शिव स्वरूप बनि जावे।।

ध्यान विधि - 116

"मैं सर्वज्ञ, सर्वकर्ता और सर्वव्यापी ब्रह्म हूँ" - ऐसा भाव करके शिवरूप बन जाओ ।



एक बार गलत धारणाएं छोड़ दी एवं मन की बागडोर आपने अपने हाथ में ले ली फिर तो विधि में सहजता से प्रवेश कर पाओगे। और शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी। लेकिन पूर्व तैयारी साहस, समय और समग्रता मांग लेती है। अगर तैयारी है तो आज से ही आध्यात्मिक क्रांति, धर्मक्रांति, और मनोक्रांति का आरंभ करो।

प्रिय साधको!

इस विभाग की सारी विधियाँ अकसर ज्ञान से, चिन्मय से, ब्रह्म से संलग्न हैं। इसलिए ही इस विभाग का नाम मैंने ध्यानम् ब्रह्म रखा है। जिससे आपको स्मरण रहे कि वह तो केवल ब्रह्मत्व में प्रवेश का एक मार्ग है। वह कोई क्रिया नहीं वह तो एक इल्म है, एक कूंजी है, एक आध्यात्मिक कीमिया है।

ज्ञान मार्ग का एक शब्द प्रत्येक साधक को अनिवार्य रूप से समझने जैसा है। वह शब्द है "प्रत्यभिज्ञा"। प्रत्यभिज्ञा का सही अर्थ है सही पहचान। स्वयं की सही पहचान अथवा आत्म स्वरूप की सही पहचान ही ध्यान का परिपाक है। ध्यान आपको अपने मूल स्रोत के साथ मूल रूप के साथ सातत्य बनाए रखने के लिए सजग कर देता है।

सातत्य तो है; अगर सातत्य नहीं होता तो जीवन संभव नहीं। परंतु आपको उस मूल स्रोत का कई बार विस्मरण हो जाता है। और आप अति साधारण मनुष्य जैसी हरकतें करने लगते हैं। ध्यान आपको ऐसी हरकतों के पार ले जाता है।

दोस्तो, प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है पहचान। यह पहचान दो प्रकार की है। इसमें से एक है – मैं शुद्ध हूँ, बुद्ध स्वरूप हूँ। और दूसरे प्रकार की प्रत्यभिज्ञा यह है कि यह सारा जगत मुझसे ही उत्पन्न हुआ है, विस्तृत हुआ है। मेरे कारण ही व्याप्त है। फैला हुआ है। और मैं ही इस विश्व के रूप में फैला हुआ हूँ।

प्यारे साधको!

इन दोनों प्रकार की प्रत्यभिज्ञा का उदय हो जाने पर साधक विश्वरूप बन जाता है। सर्वशक्तिमान भाव ध्यान। आपको इस सत्य की ओर ले जाता है।

प्रिय साधको!

शिव कहते हैं कि साधक ऐसी भावना करे कि शुद्ध, स्वतंत्र, बुद्ध आदि कल्याणमय धर्मों से युक्त सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वव्यापी परमेश्वर मुझसे अलग नहीं है।

अर्थात मैं ही सर्वज्ञ, सर्वकर्ता, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान हूँ। ऐसी धारणा करते करते साधक को इसी भाव का दृढ निश्चय हो जाता है। यह भाव साधक के अंतरमन की गहराईओं तक उतर जाता है। और वह शिवरूप बन जाता है।

प्रिय साधको!

मैंने पहले भी कई बार कहा है कि एक साधारण मनुष्य को ऐसी धारणाएं अथवा ध्यान पद्धति देते हैं तो वह घबरा जाता है क्योंकि उसका मन अपने लिए भी पूर्वग्रहों से और अविश्वास से भरा है। उपरांत ऐसी धारणाओं में मन को विदा लेनी पड़ती है। ऐसी धारणा में मन के लिए

कोई लौकिक, फालतू या बंधन का विषय नहीं बचता इसलिए मन पलायन करता है।

आपके मन को लौकिकता में विशेष रस आता है। क्यों? क्योंकि आप लौकिक में ही जिए हैं। आपने कभी अलौकिक बातों पर विचार ही नहीं किया। न कभी ध्यान में उतरने का प्रयास किया। न कभी धारणाओं में संकल्पबद्ध हुए। शायद किया भी तो वह भी योग के नाम से आसनों की उठा पटक मात्र की। और अचानक ऐसी धारणाएं अथवा ध्यान विधियाँ आपके सामने आ जाती हैं तो आपको कुछ नया नया लगता है। अपरिचित लगता है। क्योंकि मन की तैयारी ही नहीं है। वास्तव में ध्यान ही शाश्वत है।

एक दूसरी बात, कुछ लघुताग्रंथियों से पूर्वग्रसित मन विषाक्त हो गया है। तब वह ऐसी विशुद्ध विधियों में सहयोग करने के लिए तैयार नहीं होता। और आप मन के पार जाने के लिए तैयार नहीं होते।

आज तक ज्यादातर धर्म और धर्मगुरुओं ने मनुष्य देह की बहुत निंदा की है। एक ओर से मनुष्य जन्म को सराहा और दूसरी ओर शरीर की निंदा करना; ये दोनों बातों का मेल नहीं बैठता है। खैर छोड़ो।

धर्म शास्त्रों में ऐसा विरोधाभास मिलता है, उसके भी कुछ कारण हैं। परंतु यहाँ मुझे उन कारणों में नहीं पड़ना है। खैर, छोड़ो समझ अपनी अपनी।

दूसरी ओर स्वयं को भी आपने दीन, हीन, लाचार और विवष तथा पराधीन रहने की आदत डाल दी है। अज्ञान में रहने में आपको सुरक्षा का अनुभव हो रहा है। सत्य की किरणों से आप चौंधिया जाते हैं।

परस्पर झूठी सहानुभूति दिखाना और प्राप्त करना यह आपका स्वभाव बन गया है।

सहानुभूति अगर सच्ची नहीं है तो वह खतरनाक साबित होती है। और ज्यादातर लोगों की सहानुभूति औपचारिक होती है। वहाँ कुछ सच्चाई नहीं होती है। धीरे धीरे बचपन से मिली हुई ऐसी झूठी सहानुभूति की मनुष्य को आदत पड़ गई है। और खुद इतना खोखला हो जाता है कि अपने बल पर जीने के लायक नहीं रहता। बाहर सी बहुत स्ट्रोंग दिखने वालों को मैंने भीतर से बहुत खोखले देखे हैं।

दोस्तो, इस तरह आदमी कुछ तो अपने स्वभाव से तबाह होता है, कुछ तबाही मन मचाता है, कुछ तबाही इर्द गिर्द के झूठे लोग मचाते हैं और बाकी रहती है उसे तथाकथिक साधु-बाबा पूरी करते हैं। इसमें कुछ परंपरागत थोपे हुए धार्मिक संस्कार भी जिम्मेदार हैं।

इतनी सारी तबाहियों के कारण मनुष्य इस तरह से टूट चुका है कि स्वयं पर खड़े रहकर स्वयं को पहचानने की ध्यान विधियों से वह दूर भागता है। उसे ध्यान में जल्दी रस ही नहीं आता। जो खुद के बारे में बाहरी स्तर पर भी स्पष्ट नहीं। जिसका मन क्षण क्षण में बदलता रहता है। क्षण क्षण पर निर्णय बदलते रहते हैं उनमें से एक भी निर्णय सही नहीं होता। क्षण क्षण पर योजनाएं बदलती रहती हैं। जो अर्ध दग्ध की भांति जी रहे हैं। धर्म भीरुता और पाप-पुण्य की धारणाओं से जिसका मन भरा हुआ है। ऐसा मनुष्य "मैं सर्व शक्तिमान हूँ" धारणा में कैसे उतर पाएगा?

ऐसे लोगों को कोई समझाएगा कि तू सर्वज्ञ और सर्व कर्ता है तो वह उस समझाने वाले को पागल कहेगा। क्योंकि दुनिया के ऐसे पागल अकसर अच्छे नहीं होना चाहते। मैं कहती हूँ -

तू है बे-बूझ, बे-मकसद इरादा इल्म का कर ले
तेरे लाखों गुनाह को भूल जा, तू पाक है बंदा!

आदमी नासमझ है, अगर वह एक खास समझ के साथ किसी भी प्रकार की अपेक्षा के बिना, ज्ञान प्राप्ति का सच्चा इरादा कर ले तो इसी क्षण उसके सारे गुनाह नष्ट हो जाते हैं। और मनुष्य ज्ञान के संकल्प के साथ ही पावन बन जाता है। परंतु आदमी की यह तकलीफ है कि वह अपने अपराध भाव से बाहर नहीं आ सकता।

प्यारे साधको!

अगर आप ध्यान को ही लक्ष्य बनाना चाहते हैं, ध्यानमय हो जान चाहते हैं, ध्यान को सही अर्थ में जानना चाहते हैं तो आपको अपनी सारी अन्य धारणाएं अज्ञानता, मूढता, भय, और अपराध भाव को झाड़ देना होगा। मन के हाथों में से सारी डोरियाँ वापस खींच लेनी होंगी ताकि आपको वह कठपुतली की तरह न नचा पाए। आपको दीन, हीन, पापी होने का बोध कराने वाले लोगों को या तथाकथित साधु-बाबाओं को जल्दी छोड़ देना होगा। जो आपको इंसान में से उसके संप्रदाय की भेड़-बकरियाँ बनाना चाहते हैं, ऐसे लोगों से बचना होगा और प्रबल आत्मश्रद्धा जगानी होगी।

प्यारे साधको!

यह ध्यान विधि तो छोटी सी है परंतु उसके पूर्व शर्तें लंबी हैं। इस ध्यान की पूर्व तैयारी दृढ आत्मबल और कुछ क्रांति मांग लेती है। यही कसौटी की क्षण है और सच्ची साधना है।

एक बार गलत धारणाएं छोड़ दी एवं मन की बागडोर आपने अपने हाथ में ले ली फिर तो विधि में सहजता से प्रवेश कर पाओगे। और शीघ्र ही सफलता प्राप्त होगी। लेकिन पूर्व तैयारी साहस, समय और समग्रता मांग लेती है। अगर तैयारी है तो आज से ही आध्यात्मिक क्रांति, धर्मक्रांति, और मनोक्रांति का आरंभ करो।

संकल्प करो कि मैं सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और शुद्ध बोध का संस्थापक हूँ। अगर साधना और भावना प्रामाणिक होगी तो ईश्वरत्व में सहज ही प्रवेश हो जाएगा।



धारणा - 117

स्वयं परमेश्वरभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 117

तरंग जल से ज्वाला आग से, सूर्य किरण भये सूर्य प्रकाश से।
अस जग प्रतिक्रिया ईश्वर की, ते शक्ति मैं परमेश्वर की।।

ध्यान विधि - 117

जैसे जल से तरंग, आग में से ज्वाला और किरणें सूर्य से भिन्न नहीं हैं; ऐसा जानकर शुद्धज्ञान में प्रवेश कर लो ।



इस ध्यान विधि में साधक को धारणा करनी है कि मैं स्वयं परमेश्वर हूँ। जैसे जल की लहरें जल से, आग की ज्वाला आग से और सूरज का प्रकाश सूरज से ही उत्पन्न होता है। इसी तरह आत्मचैतन्य स्वरूप से ही यह चलता फिरता, भोजनादि क्रियाएं करता इन्द्रिय युक्त शरीर चल रहा है। और इन प्रवृत्तियों के द्वारा विश्व की सारी विचित्रताएं और विशिष्टताएं प्रगट होती हैं।

प्रिय साधको!

यहाँ कुछ विधियाँ ऐसी हैं कि एक दूसरे से बहुत निकट हैं। परंतु याद रहे निकट हैं; एक सी लगती हैं, एक सी होने का आभास होता है फिर भी एक दूसरे से प्रत्येक विधि भिन्न और स्वतंत्र है। यह स्पष्टता मैं इसलिए कर रही हूँ कि आप किसी प्रकार के भ्रम में न रहो।

दोस्तो, अब हम जा रहे हैं स्वयं परमेश्वर भाव ध्यान की ओर। यह भी एक अद्‌भुत विधि है। कैसे उरतना है इस विधि में इसे जरा ध्यान से समझ लो।

इस विधि के पहले हमने सर्वशक्तिमान भाव ध्यान पर प्रकाश डाला। वहाँ आपको ऐसी धारणा करनी थी कि मैं सर्वशक्तिमान हूँ और यहाँ एक कदम आगे बढ़ना है।

अगर आप सर्वशक्तिमान हैं तो फिर आपका भगवान कहीं बाहर नहीं है आपके भीतर ही है। यह बात बिलकुल स्पष्ट है। आप सर्वशक्तिमान हैं मतलब स्वयं ईश्वर हैं, परमेश्वर हैं। मेरी भाषा में साकार ईश्वर, एक ज्ञात

परमेश्वर। जिसे जाना जा सकता है, जिसे देखा जा सकता है, जिससे बातचीत हो सकती है, रंग रूप गुण वाले एक दृष्टिगोचर ईश्वर।

प्यारे साधको!

इस ध्यान विधि में साधक को धारणा करनी है कि मैं स्वयं परमेश्वर हूँ। जैसे जल की लहरें जल से, आग की ज्वाला आग से और सूरज का प्रकाश सूरज से ही उत्पन्न होता है। इसी तरह आत्मचैतन्य स्वरूप से ही यह चलता फिरता, भोजनादि क्रियाएं करता इन्द्रिय युक्त शरीर चल रहा है। और इन प्रवृत्तियों के द्वारा विश्व की सारी विचित्रताएं और विशिष्टताएं प्रगट होती हैं।

प्यारे साधको!

इस भाव में दृढता आ जाने से यह बात सहज रूप से प्रतीत हो जाती है कि यह जगत की प्रत्येक क्रिया में ईश्वर है। और मैं स्वयं भी ईश्वर हूँ तो मेरी ही शक्ति के द्वारा इस विश्व का संचालन हो रहा है।

प्रिय साधको!

बात को ज़रा समझने की कोशिश करना। यह बात कोई बौद्धिक या तार्किक अथवा शास्त्रीय स्तर पर नहीं हो रही है। इस सत्य को पहले प्रबुद्ध पुरुषों ने जाना फिर शास्त्र में आया। इसलिए इसे अस्तित्वगत रूप से ही समझना जरूरी है।

कीट–पतंग, जड़–चेतन, सबमें जो परमात्मा बस रहे हैं वही मुझमें हैं। अर्थात मुझमें और ब्रह्मांड में संचरित होने वाली शक्ति एक ही है। अर्थात मैं अन्य नहीं हूँ। वह ही हूँ जो शक्ति सबमें काम करती है। मैं उस शक्ति का अंश हूँ ऐसा समझने से बेहतर है कि मैं वह ही हूँ, मैं ही पूरे

विश्व में बस रहा हूँ। अपूर्ण की उपासना से पूर्ण की उपासना ज्यादा अच्छी लगती है। विश्व में जो कुछ भी हो रहा है वह मेरे द्वारा ही हो रहा है। क्यों?

क्योंकि ईश्वर का अस्तित्व तो समान रूप से सबमें सक्रिय है। स्वयं को अंश और दूसरों को भी अंश समझकर अंशी को अर्थात परमात्मा को भिन्न समझने से जो एक ही है और वह सर्वत्र व्याप्त है ऐसा भाव करके फिर वह एक मैं हूँ यह भाव विशेष उत्तम है।

सर्वत्र होते हुए भी मैं एक हूँ और मैं ही सभी प्राणियों में व्याप्त हूँ, स्पन्दित हूँ। इस तरह से नाम, रूप, गुण सब भले अलग दिखे परंतु मैं ही विश्वव्यापी, विश्वनियंता स्वयं परमेश्वर हूँ इस भाव से आपके भीतर एक अलग विश्व का ही निर्माण होगा। वह विश्व विराट, दिव्य, अपूर्व, पूर्ण और परमात्मा का है। वह एक आध्यात्मिक विश्व है।

प्रिय साधको!

इस विधि से गुजरने के दौरान एक बात के लिए सजग रहना, अंतिम दोनों विधि की साधना संदर्भ की चर्चा साधारण मनुष्य से मत करना। अगर आप इन विधियों का अभ्यास कर रहे हैं तो इस बात को गुप्त रखना। समान क्षमता वाला अथवा इस विषय में समझ वाला अथवा रसपूर्ण व्यक्ति हो तब कुछ बातें और अनुभव बांटे तो ठीक है, बाकी आप जिस अवस्था में पहुंचना चाहते हैं और साधना आरंभ के बाद जिन जिन अनुभवों से गुजर रहे हैं, उन अनुभूतियों को पचा लेना। क्योंकि लोग मूढ हैं। ज्यादातर लोग मात्र शरीर लक्षी हैं। उससे ज्यादा लोग मनोलक्षी हैं। उससे आगे कुछ लोग बुद्धिवादी हैं। परंतु वे उन तीनों के लिए यह विधि काम की नहीं है।

प्यारे दोस्तो!

यह विधि तो आत्म प्रतिष्ठित होने के लिए है। वीर्यवान लोगों के लिए है। जो विधि में समग्रता के साथ अपनी संपूर्ण चेतना को लगा दें। प्राण फूंक दें ऐसे लोगों के लिए है। दोस्तो, अस्तित्वगतरूप से पूरी समस्टि मेरा ही रूप है। और मेरी ही चेतना एक या दूसरे रूप से विश्व में कार्यरत है। ऐसे परम सत्य को समझने वाले कितने मिलेंगे इस दुनियां में? शायद करोडों में एक। जिसको स्वप्न में ऐसे महान सत्यों की कल्पना नहीं है और जो गलती से भी इस मार्ग पर चलना नहीं नहीं चाहते हैं ऐसे लोगों से ऐसे चरम सत्यों की बात करके क्या करें?

अगर आपने ऐसे लोगों के साथ अपने अनुभवों को बांटने की कोशिश की तो वे आपको पागल समझेंगे। क्योंकि ऐसे पेट पालू लोग विश्वरूपता की कल्पना भी नहीं कर सकते। एक अर्थ में ऐसे लोग स्वार्थांध हैं। वे इतने दुन्यवी स्वार्थ में डूबे हुए हैं कि खुद का आध्यात्मिक स्वार्थ भी भूल जाते हैं। पेट और इन्द्रियाँ तथा मन और अहंकार में राचने वाले वे लोग परमार्थी नहीं बन सकते। उन लोगों की दौड़ मन से शरीर और शरीर से मन तक की होती है। इसलिए मत कहना उन लोगों को अपनी अनुभूतियाँ।

चरवाहे के हाथ में हीरा आता है तो वह बकरी के गले में बांध देता है। उसे हीरे की कीमत नहीं होती। कूए के मेंढक के पास चंद्र यात्रा की बात करेंगे तो वह चंद्रयात्री का मजाक उड़ाएगा। जन्मांध के पास सूर्य किरणों की और रंगों की बात करेंगे तो वह बहिष्कार कर देगा। ईर्ष्यालु के पास किसी की प्रगति की बात करेंगे तो वह जल जाएगा। एक बार एक सुघरी (टेलर बर्ड) ने बारिश में इधर उधर भीगते बंदर को कहा कि आप

भी हमारी तरह एक सुंदर घर बनाकर रहो ना! बंदर सत्य को समझ नहीं पाया और उसने लात मारकर चिड़िया का घोसला गिरा दिया।

दोस्तो, मैं मना कर रही हूँ, बंदर जैसे चंचल लोगों के साथ, क्रोधियों के साथ, अस्थिरों के साथ, इस विधि के बारे में चर्चा मत करना।

आध्यात्मिक अनुभूतियों को पचाना सीखो। ये कोई दिल्लगी की बातें नहीं हैं। कि हर कोई इससे एन्टरटेन कर ले। यह तो विश्वरूप बनने की बात है। अतिसूक्ष्म इश्क है ज्ञान में खो जाता। इसे हर कोई नहीं समझ सकता।

दोस्तो, यह एक ऐसा रास्ता है कि जिसके बारे में मैंने कुछ लिखा है –

मोहब्बत प्यार और इश्केमिजाजी बहुत आसान है
यहाँ तो जी अकेला, जल अकेला और अमर हो जा।

ये अकेले चलने का मार्ग है। इसमें गुरू भी ज्यादा मदद नहीं कर पाएंगे। आपको ही विधि की गहराईयों में उतरना पड़ेगा। नसीब पर भरोसा करने से काम नहीं चलेगा। और केवल आशा बनाकर बैठे रहेंगे तो भी सफलता नहीं मिलेगी। इस विधि में तो जलकर (अहंकार को जलाकर, दुनियादारी को जलाकर, स्वार्थों को जलाकर, संकुचितता को जलाकर, भेदभाव को जलाकर) खत्म हो जान है। इस संदर्भ में मैंने कुछ लिखा है –

मुरीदों से तू कह देना करे मुराद कोई और
मुक्कदर को मिटा देगी इलम की एक चिंगारी।

दोस्तो, और इच्छाएं छोड़कर जो ऐसी विधियों में मिट जाता है। वह गुरू बन जाता है। ज्ञान की एक चिंगारी कैसा भी बुरा नसीब हो उसे

भस्मीभूत कर देती है। यहाँ आपके शिष्यभाव से काम नहीं चलेगा। यहाँ आपको स्वयं परमेश्वर हो ऐसा भाव करना है।

तू स्वयं इतना शक्तिमान है कि तेरे स्पंदनों से सारी सृष्टि धबक रही है। तू भगवानों का भगवान है, देवों का देव है, ज्ञानियों में ज्ञानशिरोमणी है और शक्तिशालियों में स्वयं परमेश्वर है।

प्यारे साधको!

जैसा भाव होगा ऐसी सफलता प्राप्त होगी। शिव कहते हैं कि स्वयं परमेश्वर भावना में डूबकर ध्यान करने वाले शिवरूप समाधि को उपलब्ध हो जाते हैं।

प्यारे साधकों!

जिन लोगों को ऐसी अनुभूति हो चुकी है वे लोग ज्यादातर तो मौन में चले जाते हैं। किसके साथ बात करें! अनुभवित सत्य को बिनअनुभवी के साथ बांटने का कोई रास्ता ही नहीं। अज्ञानियों के साथ ऐसे अनुभवों को बांटना यह मूर्ख सिद्ध होना है।

बौद्ध धर्म में तीन अवस्था के संत बताए हैं; एक अरहत, दूसरा प्रत्यक बुद्ध, तीसरा बोधीसत्व। अरहत स्वयं परमेश्वर भाव की अनुभूति करके चुप हो जाता है फिर वह न किसीको उपदेश देते हैं, न विश्वकल्याण के लिए सक्रिय होते हैं। केवल अपनी मस्ती में जीते हैं। उनके गहन मौन में उसकी अवस्था का दर्शन होता है। वे लोग जान चुके होते हैं कि बंजर भूमि में बोना यह ऊर्जा को क्षीण करना और बीज का नाश करने जैसा है।

प्रत्यक बुद्ध अपना कल्याण भी चाहता है और दूसरों को भी कल्याण मार्ग के लिए प्रेरित करता रहता है। और तीसरी अवस्था है

बोधीसत्व की। इस अवस्था में पहुंचा हुआ संत स्वयं का भी कल्याण करते हैं और अन्य को भी मोक्ष में ले जाने के लिए कटिबद्ध होते हैं।

दोस्तो, भगवान बुद्ध को संघ के भिक्षु बोधिसत्व कहते थे। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर आदि इस कक्षा में आते हैं। परंतु उन लोगों को दुनियाँ को जगाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा। इसू, मंसूर, मीरा, और सोक्रेटिस भी इसी अवस्था में पहुंच गए थे। लेकिन उन्हें कुरबानी देनी पड़ी।

प्यारे भक्तो!

वे लोग एक अलग ऊर्जा लेकर पृथ्वी पर आए थे। आप उनसे भिन्न नहीं हैं। फिर भी याद रखना कि अरहत कोटि के महात्मा स्वार्थी या मूर्ख नहीं थे कि चुप हो गए। शिव, कपिल, वशिष्ठ, वेदव्यास और पतंजलि भी पागल नहीं है कि कहते हैं कि कुपात्र को और अश्रद्धावान को यह ज्ञान मत देना।

दोस्तो, मैं आपको भी कहती हूँ कि अस्तित्व ने आपके द्वारा जो विश्वकल्याण चाहा है तो आप उस मार्ग पर चले जाएंगे। अस्तित्व आपको उस मार्ग पर भेज कर ही रहेगा। परंतु स्वयं परमेश्वर भाव में पहुंच जाने के बाद अंतरिक्ष ईश्वर की भांति साक्षी बन जाने की संभावना विशेष है। दूसरों को समझाने के लिए बहुत आयास प्रयास करने की जरूरत पड़ती है। काफी ऊर्जा का व्यय भी हो सकता है। प्रत्येक नारद को वाल्मीकि मिल जाए और वह वाल्मीकि ऋषि बन जाए यह कोई जरूरी नहीं है।

आप किन किन को समझाने बैठेंगे कि आप स्वयं परमेश्वर हैं। आपने किसी ईश्वर को कभी आग्रह करते हुआ देखा है कि मुझे परमेश्वर मानो! इसलिए मैं तो कहती हूँ कि

मिले मंसूर तो कहना कि पहचाना तो पहचाना

तजुर्बा अनलहक का क्या बयां करना जरूरी था ?

सत्य का अनुभव करके महाशांति के विश्व में प्रवेश कर लो।



धारणा - 118

द्वैतमुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 118

"मैं हूँ" "यह मेरा" यह भावा, ज्ञानी अज्ञानी समान रूप आवा।
ते मैं आत्म तत्व का बोधक, साधक सम्यक बने जो शोधक।
सबको निज आत्मा अति प्यारी, तेही परमेश्वर आनन्दकारी।
अस समझी बनो द्वैत से मुक्ता, शब्द गूढ यह ज्ञान से युक्ता।

ध्यान विधि - 118

"मैं हूँ" और "यह मेरा है"- इस भाव की भौतिकता से ऊपर उठकर "मैं" को आत्मतत्व के रूप में जानकर मुक्त हो जाओ ।



साधक

जब द्वैत मुक्ति भाव ध्यान से अपने भीतर उतरकर और व्यवहार में भी प्रतिपल सजग रहकर अभ्यास के द्वारा "मैं" के और मेरे तेरे के शुद्ध स्वरूप को जान सकता है। और ध्यान "मैं" का शुद्धिकरण कर देता है। तब वह विशुद्ध "मैं" ईश्वरस्वरूप, आत्मस्वरूप, चिन्मय और आनन्दरूप बन जाता है।

प्रिय साधको!

अब हम जा रहे हैं द्वैतमुक्ति भाव ध्यान की ओर। द्वैत भाव क्यों पैदा होता है? माया के कारण। तब प्रश्न उठता है कि माया क्या है? मानस के अरण्य कांड में प्रबुद्ध राम लक्ष्मण से कहते हैं कि मैं और मेरा, तू और तेरा यह भाव ही माया है और यह द्वैत भाव का कारण है।

मैं अरु मोर तोर ते माया जेहि बस किन्हेउ जीव निकाया।

यह द्वैत भाव स्वयं को महान से अथवा श्रेष्ठतम से तुच्छ करने की चेष्टा है। लौकिक व्यवहार में ऐसा करना ये लोक धर्म अथवा आज के मनुष्य का स्वभाव बन गया है। परंतु अध्यात्म जगत में इससे विपरीत है।

दोस्तो, मैं और मेरा, तू और तेरा यह सब मन का जाल है। मन माया के भ्रामक निर्माण के सिवाय कुछ भी नहीं। मन ऐसा भेद करके खुश रहता है, पुष्ट रहता है, संतुष्ट रहता है क्योंकि मन का स्वाभाव ही है आपको उलझनों में फंसाए रखना, आपको मूर्छा में रखना।

दोस्तो, आपको आश्चर्य तो होगा परंतु मैं कहती हूँ कि यह एक जाग्रत मूर्छा है। वह एक ऐसी स्थिति है कि जहाँ आप सोए भी नहीं है परंतु जाग्रत भी नहीं हैं। अकसर दुनियाँ के लोग ऐसी ही हालात में जीते हैं। यह बड़ी दयनीय स्थिति है। विशेष करुणा की बात यह है कि चलते फिरते आदमी को पता भी नहीं है कि वह मूर्छा में है। सब नशे में हैं। कौन किसको संभाले?

दोस्तो, जब सबकी समान स्थिति होती है तब कोई किसीको कुछ कह नहीं सकता और कोई कुछ विशेष समझ नहीं सकता। सबको सबकुछ नोर्मल लगता है। जहाँ पूरी सोसाइटी पागलो की होगी, वहाँ अगर कोई स्वस्थ आदमी आ जाएगा तो उसे पागल माना जाएगा। आपने पागलों का अस्पताल देखा हो तो पता होगा कि वहाँ कभी कभी आप तय नहीं कर पाएंगे कि पागल कौन है? और पागल को लेकर आने वाला उसका रिश्तेदार कौन है? स्वस्थ पागल लगता है और पागल स्वस्थ। पागलों की सोसाइटी अकसर ऐसा भ्रम खड़ा करती है।

खैर! मूल बात की ओर आईए। प्रबुद्ध राम लक्ष्मण को बताते हुए कहते हैं कि "मैं अरु मोर तोर ते माया" मैं और मेरा, तू और तेरा यह भाव ही माया है। लक्ष्मण पूछते हैं कि ऐसी माया के वश कौन कौन हैं? तब राम कहते हैं कि समग्र ब्रह्मांड के जीव माया के वश हैं। लक्ष्मण पूछते हैं कि माया का साम्राज्य कहाँ तक फैला हुआ है? तब राम कहते हैं कि जहाँ तक इन्द्रियाँ, इन्द्रियों की शक्ति और मन पहुंच सकता है वहाँ तक समझ लो कि माया का साम्राज्य है।

प्यारे साधको! कहने का तात्पर्य इतना ही है कि मन और माया एक दूसरे के पर्याय जैसे हैं। माया मन की जननी है और नए नए मन को

पैदा करती रहती है। मन माया में राचता है। दोस्तो, जो जो बातें भ्रमित कर रही हैं वे सब माया हैं। यह माया द्वैत भाव को जन्म देती है। भेद भाव का मूल है।

शिव कहते हैं कि "मैं हूँ" और "यह मेरा है" यह भाव ज्ञानी अज्ञानी दोनों में समान रूप से पैदा होता है। परंतु दोनो मैं में फर्क है। एक "मैं" अजाग्रत अवस्था में पैदा होता है, वह बंधन है। और सजगता में बोला हुआ "मैं" आत्मतत्व का बोधक है। "मैं" का प्रयोग बुद्ध भी करता है और बुद्धु भी, राम भी करता है और रावण भी, कृष्ण भी करता है और कंस भी, महावीर भी करते हैं और गोशालक भी; परंतु दोनों के "मैं" में बहुत फर्क है।

दोस्तो, जब साधक सम्यक साधना में से गुजरता है, तभी इन दोनों "मैं" का भेद उसकी समझ में आ सकता है। पानी तो पानी है परंतु कीचड़ से मिला हुआ पानी गंदगी बन जाता है और शुद्ध गंगाजल पावन कहलाता है। बात समझने जैसी है, चीज एक ही है परंतु किसके संग में है? कौन सी स्थिति में है? किस अवस्था में है? इसपर उसकी व्याख्या निर्भर करती है।

साधक जब द्वैत मुक्ति भाव ध्यान से अपने भीतर उतरकर और व्यवहार में भी प्रतिपल सजग रहकर अभ्यास के द्वारा "मैं" के और मेरे तेरे के शुद्ध स्वरूप को जान सकता है। और ध्यान "मैं" का शुद्धिकरण कर देता है। तब वह विशुद्ध "मैं" ईश्वररूप, आत्मस्वरूप, चिन्मय और आनन्दरूप बन जाता है।

परंतु मानव मन की एक तकलीफ है। वह साधना से उसका शुद्धकरण नहीं चाहता परंतु फिर भी उन्हें मैं प्यारा लगता है। वह हर

चीज़ में "मैं" को जोड़ देता है। जैसे कुछ औरतों को आदत होती है कि बासी चीजों को खपाने के लिए उन्हें ताज़ा और सुवासित चीजों में मिला देती हैं। वैसे ही अज्ञान और अहं से भरा हुआ "मैं" बासी और दुर्गंधयुक्त है। और स्व का अनुभव करने वाला "मैंह्ल तरोताजा, सुवासित और एक स्वस्थ "मैं" है।

दोस्तो, मैंने एक कविता लिखी है – जिसका शीर्षक है "मैं मैं मानव क्यों करता?" उस "मैं" "मैं" के मूल में अहं, अज्ञान, मोह, ममत्व, स्वार्थ और द्वैत भाव छिपा है।

सब कहते हैं दुनिया में कि
ईश्वर है कर्ता–हर्ता
तो फिर बोलो मरते दम तक
'मैं'–'मैं' मानव क्यों करता?

'मैं'–'मैं' 'तू'–'तू' के झगड़े में
'मैं' मुझसे ही दूर गया
'मैं'–'मैं' 'तू'–'तू' के फंदे से
बंदा तुझसे दूर गया

जग में आते ही देखा तो
सब करते थे 'मैं'–'मैं'–'मैं'
माता पिता और भाई बहन भी
करते थे बस 'मैं'–'मैं'–'मैं'

चलते फिरते हँसते रोते
सब कहते थे 'मैं'–'मैं'–'मैं'
प्रेम–ब्रेम सब ठीक था भाई
मूल मंत्र था 'मैं'–'मैं'–'मैं'

‘मैं‘ अबोध नवजात शिशु
बेबस बेहोश में सुनता था
रैन-दिन ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘ सुनकर
सीख गया ‘मैं‘ ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘

पहली बार जब ‘मैं‘ बोला तो
हँसता था मन फूलता था
जहरीला ये बीज था किसको
मालूम जहर था ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘ ?

किसको पता था ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘
मारेगा मुझको जीवन भार
जनम जनम तक छोड़ेगा ना
मुझको मेरा ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘

बचपन बीता ‘मैं‘-‘मैं‘ करता
गई जवानी ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘
‘मैं‘ बकरा कि मानव था?
बुढ़ापे तक ‘मैं‘-‘मैं‘-‘मैं‘ ?

किससे पूछूं कौन हूँ ‘मैं‘ ?
और कहाँ कहाँ में जाऊँगा?
‘मैं‘ ‘मैं‘ ‘तू‘ ‘तू‘ की दुनियाँ में
बार बार मैं आऊँगा?

कोई कहे ‘मैं‘ आत्म रूप हूँ
कोऊ कहे जीव प्राण हूँ
‘मैं‘-‘मैं‘ से मैं मानव पशु या
ईश्वर का अवतार हूँ?

मुझको किसने जनम दिया
और मैं दुनिया में क्यों आया?
रिश्ते नाते खुशियाँ ग़म
मैं 'मैं'-'मैं'-'मैं' कैसे लाया?

पैदा होकर इस दुनिया में
आते ही मैं क्यों रोया?
क्या था मेरे पास बताओ
आकर मैंने क्या खोया?

सच्चे सवाल धीरे धीरे
मेरा 'मैं' भूलता ही गया
और प्रतिपल प्रतिदिन मैं
केवल सिखा 'मैं'-'मैं'-'मैं'

लेकर कागज कलम गया 'मैं'
शाला में कुछ पढ़ने को
देखा सब लड़ते थे बच्चे
कारण था बस 'मैं'-'मैं'-'मैं'

बच्चे तो लड़ते है लेकिन
यहाँ बड़े भी लड़ते थे।
थोड़ा बहुत पढ़ाते थे पर
ज्यादा तो था 'मैं'-'मैं'-'मैं'

धीरे धीरे बड़ हुआ और
लगा घूमने गाँव में
केवल मेरे घर में नहीं था
घर घर में था 'मैं'-'मैं'-'मैं'

'मैं'-'मैं' ने बांधा था सबको
बच्चे बूढ़े वृद्ध थे
गिल्ली-डंडे से दिल्ली तक
सब करते थे 'मैं'-'मैं'-'मैं'

'मैं'-'मैं' करती माँ ने चाहा
अब 'मैं'-'मैं' मैं कहाँ करूं?
लड़के की शादी करवा दी
लिया मज़ा फिर 'मैं'-'मैं'-'मैं'

मंदिर मस्जिद जाके देखा
गुरुद्वारे में 'मैं'-'मैं'-'मैं'
वहाँ भी पंडित पुजारी
करते थे मिलकर 'मैं'-'मैं'-'मैं'

मुल्ला पादरी इतराते थे
लड़ते थे 'मैं'-'मैं'-मैं-'मैं'
अल्ला ईश्वर ईसु बेचारे
फंसे थे सबके 'मैं'-'मैं'-में

मुझे हुआ सत्संग सुनूं
कुछ कथा प्रवचन में बैठूं
वहाँ भी उलझन खड़ी हुई!
भीड़ में पाया 'मैं'-'मैं'-'मैं'

वेद पुरान कुरान गीता
रामायण तो थे कागज़ पर
अपनी अपनी आलापी 'मैं'
सब करते थे 'मैं'-'मैं'-'मैं'

प्रेम अहिंसा सत्य धरम,
सतयुग की पुरानी बातें थी
नयी बात पर भिन्न स्वरों में
सबके मन में 'मैं'-'मैं-'मैं'

भाई-भाई ईमान धरम
नीति के नवनीत मंचों पर
अल्ला ईश्वर छिपकर देखें
नया तमाशा 'मैं'-'मैं'-'मैं'

तथाकथित ध्यानी ज्ञानी
योगी भोगी जोगी देखे
ज्ञान-ध्यान के परदे में
पलता देखा बस 'मैं'-'मैं'-'मैं'

गूरू-चेले और पिता पुत्र
मियाँ-बीबी सब धोखा था
सब रिश्तों में 'मैं'-'मैं'-'मैं' का
एक ही खेल अनोखा था

सब कहते थे प्रेम परस्पर
करते हैं इक दूजे को
लेकिन मर मिटने पर भी
नहीं छोड़ते 'मैं'-'मैं'-'मैं'

धर्मालय में विद्यालय में
न्यायालय में लय ही कहाँ?
बेसुरा बेढंगा बजता
एक ही स्वर था 'मैं'-'मैं'-'मैं'

‘मैं’–‘मैं’ ने धरती बाँटी
आकाश भी देखो बाँट दिया
नदियाँ पर्वत सागर की
मस्ती को उसने काट दिया

‘मैं’–‘मैं’ ने इन्सां को काटा
इन्सां से इन्सां के हाथ
‘मैं’–‘मैं’ से हिंसा भड़की
राग द्वेष मतलब के साथ

‘मैं’–‘मैं’ ने हर घर को बाँटा
टुकड़ों में परिवारों को
भाई भाई को बाँट दिया
बच्चे बूढ़े माता तक को!

‘मैं’–‘मैं’ की माया है कैसी
अच्छे अच्छे छले गये
देव देवियाँ ऋषि मुनी
तपसी साधु भी ठगे गये

‘मैं’–‘मैं’ करता गया दशानन
‘मैं’–‘मैं’ करता कंस गया
गये सिकंदर पोरस चंगेज़
लेकिन ‘मैं’–‘मैं’ नहीं गया

‘मैं’ का मरना जीवन है
‘मैं’ ‘मैं’ का जीना है मृत्यु
‘मैं’–‘मैं’–‘मैं’ करते जीना तो
जीते जो ही अप–मृत्यु

कहाँ जाऊं 'मैं' किससे पूछूं
कुदरत कुछ तो बतलादो!
'मैं'-'मैं' से छुटकारा पा लूं
कोई करिश्मा दिखला दो

पाठ-पूजा माला तस्बी
तीरथ-दर्शन में 'मैं'-'मैं'-'मैं'
दान पुण्य और परोपकार
सेवा कीर्तन में 'मैं'-'मैं'-'मैं'!

'मैं'-'मैं' की भाषा में भूलूं
'तू' ही 'तू' अब सिखला दो
'मैं'-'मैं' तू तू छाडूं मालिक
थोड़ी किरपा जतला दो

जनम जनम से 'मैं' 'मैं' करता
'मैं' आया हूँ दुनिया में
'तू ही तू' 'तू ही तू' रटना
अब चाहा है जीवन में

मानव की रग रग में 'मैं' 'मैं'
कूट कूट कर भरा गया
कहीं जगह ना रही राम की
बहुत दूर वह चला गया

अब 'मैं' 'मैं' से हार गया हूँ
टूट गया हूँ थक भी गया
ऊब गया हूँ लुट गया हूँ
मायूस होकर भटक गया

'मैं' 'मैं' करते मानव तूने
ढूँढा है 'मैं' 'मैं' का स्थान?
नाम रूप सब नाशवंत हैं
'मैं' 'मैं' का फिर कैसा मान?

तेरा 'मैं' जो धन में है तो
धन दौलत छूट जाती है
एक ही क्षण में महा मृत्यु
आकर तुझको लूट जाती है

तेरा 'मैं' जो रंग रूप में
बसा है ऐसा लगता है
चमड़ी तो है राख की ढेरी
रूप रंग सब जलता है

किसीने अच्छा गाना गाया
फिर वो बोला 'मैं' 'मैं' 'मैं'
स्वर तो मिला है सरस्वती से
क्यों मूरख कर 'मैं' 'मैं' 'मैं'

किसी ने अच्छा काव्य बनाया
फिर कहता है 'मैं' 'मैं' 'मैं'
शब्द ब्रह्म तो देन प्रभु की
मूढ तू मतकर 'मैं' 'मैं' 'मैं'

नाच गान संगीत चित्र में
कलाकार की 'मैं' 'मैं' 'मैं'
तेरी क्या औकात है बंदे
'मैं' 'मैं' फैंक समंदर में

कुछ ने लिखे उपन्यास और
कथानकों में 'मैं' 'मैं' 'मैं'
स्मरण और शक्ति ईश्वर की
मुफ्त में करता 'मैं' 'मैं' 'मैं'

बहादुरी सर्जरी डाक्टरी
इजनेरी मास्टरी सही
दातारी भी देन खुदा की
मंदमति कहे 'मैं' 'मैं' 'मैं'

ज्ञानपूर्ण मीठी वाणी में
कथाकार की 'मैं' 'मैं' 'मैं'
प्रज्ञा तो प्रभु का प्रसाद है
मत कर जड़मति 'मैं' 'मैं' 'मैं'

थोथे को पढकर तू माने
पंडित पूज्य परांबर 'मैं'
नहिं विद्वान विदूषक लगता
जब करता तू 'मैं' 'मैं' 'मैं'

शब्द स्पर्श रस गंध रूप में
हरदम करता 'मैं' 'मैं' 'मैं'
ये तो लीला ईश्वर की है
वह करता है 'मैं' 'मैं' 'मैं' ?

रिश्तो में भी 'मैं' 'मैं' करता
जीव हमेशा मरता है
पुण्य की पूंजी नही कमायी
'मैं' 'मैं' से मन भरता है?

फिर भी 'मैं' 'मैं' करना है तो
कहना तुम 'मैं शिव हूँ'
'मैं हूँ सत्-चित्-आनंद रूप और
ब्रह्म, भले मैं जीव हूँ

मालिक में जो मन मिल जाता
ऐसा 'मैं' ना मरता है
आतम परमातम को जाने
तब 'मैं' मस्ती देता है

महा महेनत से छूटता है 'मैं'
महाकृपा से छूटता है
बाकी तेरा जनम जनम में
'मैं' 'मैं' से सर फूटता है

'मैं' 'मैं' का मूल मन में है
और मन का मूल है माया में
माया काया से जो छूटे
वही शाश्वत की छाया में

बुद्धि का बंदर मन मर्कट
भव बंधन में घिसटता है
मन मरने से 'मोहिनी' सचमुच
'मैं' 'मैं' 'मैं' भी मिटता है

दोस्तो, "मैं" "मैं" एक दृष्टि से अहं भाव की पुष्टि है और दूसरे छोर पर वही "मैं" आत्मभाव की अभिव्यकित है। जागा हुआ मनुष्य भी मैं के साथ ही जीता है। जब तक जीवन है तब तक उस मैं की उपस्थिति है। उसे बोलो या ना बोलो यह दूसरी बात है। बोलने या ना बोलने से

क्या? महत्वपूर्ण तो है शब्द के पीछे छिपा हुआ भाव। शब्द कहाँ से प्रगट हुआ है यह जानना महत्वपूर्ण है। शुद्ध हृदय से या अशुद्ध मन से? शब्द में कभी अर्थ केन्द्र में नहीं है, भाव केन्द्र में है। ज्ञानी का भाव अलग होता है, अज्ञानी का भाव अलग। ज्ञानी का "मैं" विशुद्ध होता है, अज्ञानी का अविद्यापूर्ण और अज्ञानपूर्ण। ज्ञानी का "मैं" सहज होता है, अज्ञानी का मैं दूषित।

प्यारे साधको!

सबको अपनी आत्मा अति प्यारी है। सामान्य रूप से मनुष्य बाहरी दौड़ में ही पड़ा है। स्वयं के बारे में सोचने का उसके पास समय ही नहीं है। फिर भी वह स्वयं प्रतिपल उसकी मदद के लिए तत्पर है। उस स्वयं में से उसे शक्ति मिल रही है। जिसे योगीजन आत्मा कहते हैं। वह आत्मा जब बिदा लेने की तैयारी करती है तभी मनुष्य को पता चलता है कि उसका कितना मूल्य है! उसके बिना तो एक ही क्षण में सबकुछ निर्थक हो जाएगा! पूरी बाजी पलट जाएगी! एक ही क्षण में बरसों की दौड़ अर्थहीन हो जाएगी! कितनी असहायता! कितनी पीड़ा!

खैर! मेरे कहने का तात्पर्य है कि सबको अपनी आत्मा प्यारी तो है परंतु मनुष्य अज्ञान और अजाग्रति के कारण उसके प्रति लक्ष्य नहीं देता। वह अपनी सारी प्यारी चीजों के प्रति ध्यान देता है परंतु ध्यान में न उतरकर आत्मा की उपेक्षा करता रहता है।

प्यारे साधको!

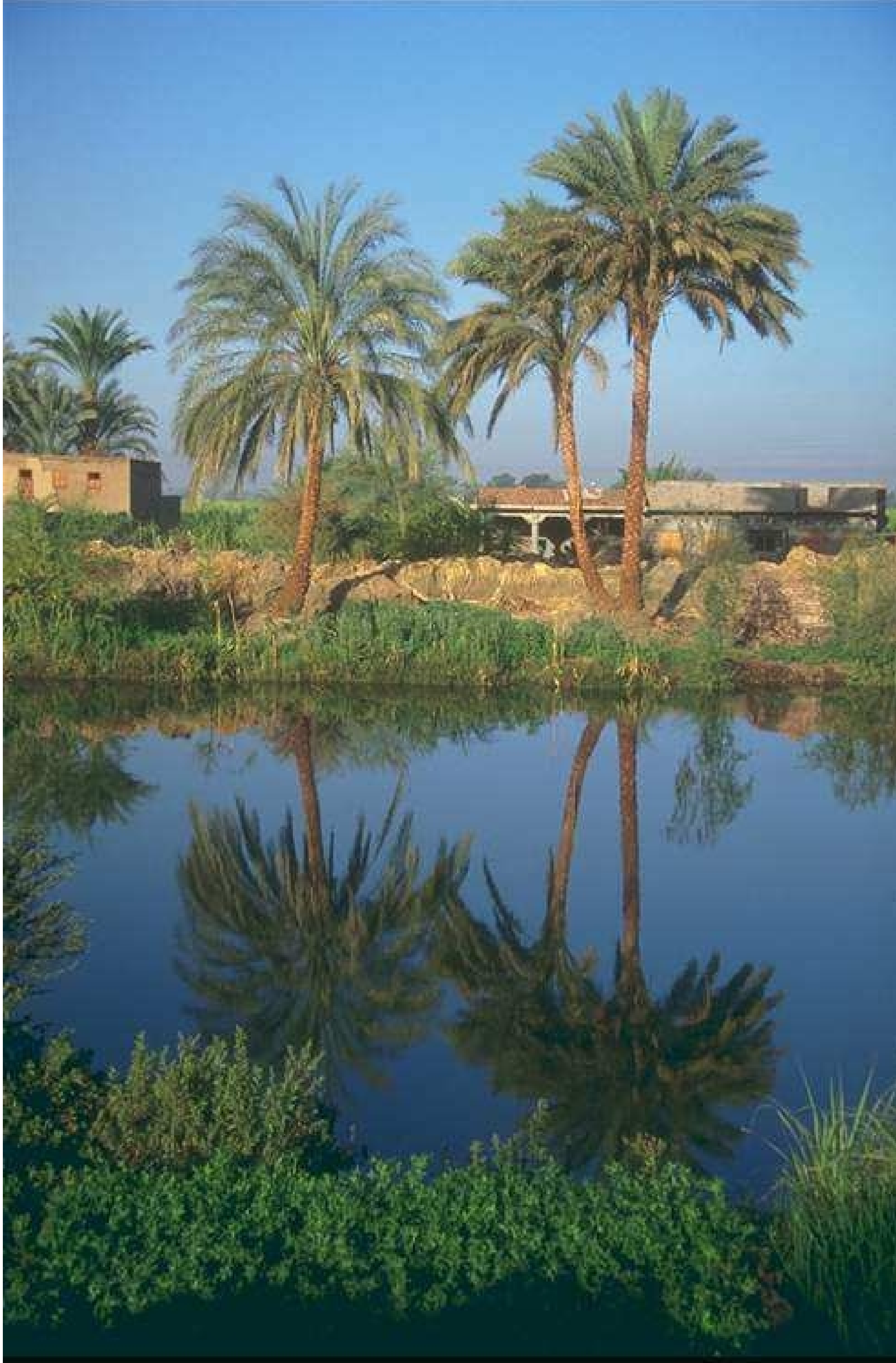
विधि कहती है कि आत्मा ही परमेश्वर है। आनंद देने वाला और आनंद का भोग करने वाला आनंदरूप भी है। "मैं" और "तू" सबमें वह समान रूप से बसा है – ऐसा तीव्र भाव करके गूढ ज्ञान से युक्त होकर

मुक्तावस्था में, शिवावस्था अथवा ज्ञानावस्था में विहार करो, आनंदित रहो और सदानंद को उपलब्ध हो जाओ। भेद के पार चले जाओ। वही अद्वैतावस्था है।

मैं चाहूँगी कि प्रतिपल सजगता और निरंतर आत्मस्मरण का बोध रखने से आपको शीघ्र सफलता प्राप्त हो सकती है।

तू ब्रह्मरूप परब्रह्मरूप
तू जीवन रस का सोता है
साधक तू असल घर भूल गया,
क्यों सपनों में सब खोता है?





धारणा - 119

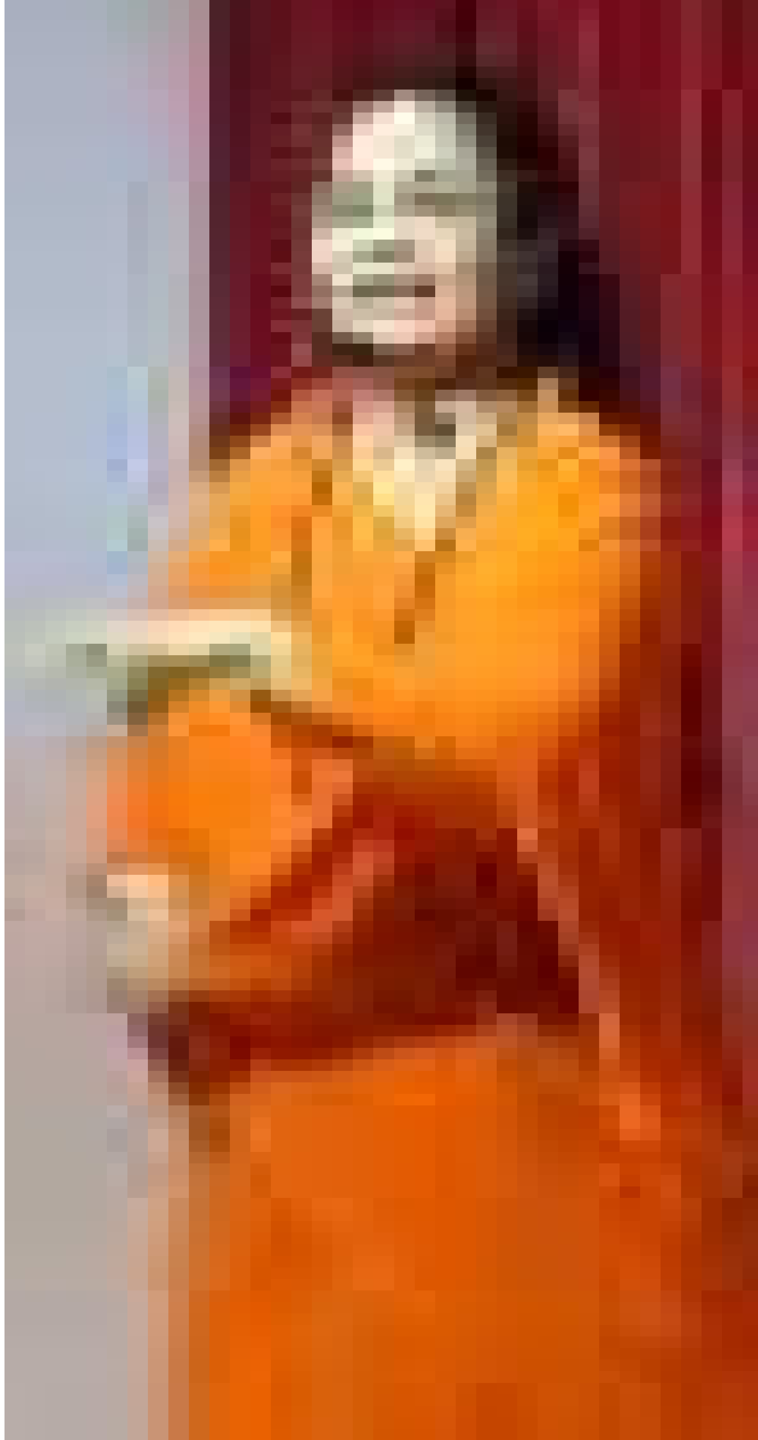
नित्यभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 119

सदा नित्य परब्रह्म अविनाशी, निर्विकल्प व्यापक सुखराशि।
साधक धन्य धन्य बनि जावे, दिव्य भाव सह नित्य जो ध्यावे।।

ध्यान विधि - 119

परमात्मा नित्य, परब्रह्म, अविनाशी, निर्विकल्प, व्यापक और सुखधाम है - इस सत्य का ध्यान करके धन्य बन जाओ ।



लगता है कि विधि बहुत सरल है परंतु मन का स्वभाव है कि वह आपको इधर उधर भटकाता रहता है। आप अनुसधान जोड़ने को यत्न करते हो और वह अनुसंधान तोड़ने पर तुला है। ऐसी स्थिति में आपको स्थिर और अडिग रहना है। चित्त की समग्र शक्ति को उस नित्य के संग जोड़ने का प्रयत्न करो। मन की ओर लक्ष्य ही न दो। मन के प्रति लक्ष्य देंगे तो अनुसंधान भंग होगा। लक्ष्य देंगे तो उपेक्षा भी करनी पड़ेगी। ध्यान ही मत दो। ताकि लक्ष्य या दुर्लक्ष्य का प्रश्न ही न खड़ा हो। और दोस्तो अपनी एकनिष्ठा और निरंतर उस नित्य की स्मृति से उस व्यापक, ब्रह्म, निरंजन, निर्गुण, विगत, विनोद, अजन्मा और अविनाशी का अनुभव कर लो।

प्रिय साधको!

चेतना कभी नष्ट नहीं होती। वह एक जीवंत ऊर्जा है जिसका कभी नाश नहीं होता। वैसे तो कोई भी पदार्थ भी नष्ट नहीं होता। उसका केवल रूपांतरण होता है। यह बात वैसे तो पहले हो चुकी है। फिर भी संदर्भ के साथ पुनरावर्तन करना पड़ता है। जिससे साधकों को सत्संग प्रवाह में स्वयं को स्थिर करना आसान हो जाता है। और कुछ अच्छी बातों का पुनर्स्मरण।

प्यारे साधको!

चेतना का कभी नाश नहीं होता है, इस सनातन सिद्धांत के कारण ही कृष्ण गीता में कह पाया है कि आत्मतत्व को पानी भिगो नहीं सकता, आग जला नहीं सकती, वायु स्पर्श नहीं कर सकता, शस्त्र छेद नहीं सकता .. .. इत्यादि।

खैर छोड़ो! मुझे बात ध्यान विधि की करनी है।

प्यारे साधको!

इस आत्मतत्व को चेतना कहो, महाचेतना करो, विराट कहो, ब्रह्म परब्रह्म या अविनाशी कहो कि नित्य कहो इसके हजारों नाम हैं। हमारे मनीषी उसे अलग अलग नाम से पुकारते हैं।

शिव कहते हैं कि वह विभु परमेश्वर, नित्य, निराधार, व्यापक और समग्र विश्व के नाथ है। इन सारे शब्दों का बार बार स्मरण करता हुआ जो साधक उस सूक्ष्म के साथ अपना अनुसंधान कर लेता है उसका चित्त एकाग्र होकर परमता का अनुभव करता है और साधक धन्य हो जाता है। वह धन्यता की क्षण ही समाधि की अवस्था है।

प्यारे साधको!

परंतु यहाँ एक शर्त है। उस नित्य अविनाशी, परब्रह्म, निर्विकल्प, सर्वव्यापक और सुखधाम प्रभु का दिव्य भाव से नित्य ध्यान करना है। तभी ही आपको उस नित्यता का अनुभव होगा।

शिव कहते हैं कि यह ध्यान करने से साधक कृतार्थ हो जाता है। कृतार्थ शब्द बड़ा प्यारा है। कृतार्थ का अर्थ क्या है? मेरी समझ के अनुसार कहूँ तो – आपने जो कुछ भी किया वह सार्थक हो गया, सफल हो गया।

प्यारे साधको!

साधक ध्यान क्यों करता है? मैं कहती हूँ कि कृतार्थता के लिए। कृतार्थता किसमें है? निर्विकल्प अवस्था में, परम शांति में, आनंद में, आत्मसंतोष में।

एक अर्थ में शिव यह कहना चाहते हैं कि जो उस निराधार विभु का ध्यान करेंगे वह यह सब सहज ही प्राप्त कर लेगा।

प्यारे साधको!

यह ध्यान विधि वैसे तो ईश्वर स्मरण का ही एक प्रकार है, आत्मस्मरण और प्रभुस्मरण में कोई खास भेद नहीं है। नित्य स्वरूप का स्मरण ये निर्गुण ईश्वर का स्मरण है।

विश्व में दो प्रकार के भक्त हैं — एक ज्ञानी भक्त और दूसरे प्रेमी भक्त। भगवान का स्मरण तो दोनों ही करते हैं। परंतु सगुणोपासक ईश्वर के साकार स्वरूप की उपासना करते हैं और निर्गुण उपासक निर्गुण स्वरूप की उपासना करते हैं। एक का राम आतमराम है अथवा ब्रह्म राम है और दूसरे का राम रूप, गुण और नाम से पूर्ण है।

प्यारे साधको!

ध्यान मार्ग में भी दो प्रकार के साधक होते हैं। ज्ञान मार्गी और प्रेम मार्गी। ज्ञान मार्गी साधक के लिए कुछ और ध्यान विधियाँ हैं और प्रेम मार्गी साधक के लिए कुछ अलग। ज्ञान मार्गी ध्यानी के लिए जो विधियाँ हैं वे थोड़ी विशिष्ट और कठिन लगती हैं। ध्यान मार्ग में भी भक्तों को लिए कुछ ध्यान विधियाँ हैं। ज्ञान मार्ग में कुछ ऐसे भक्त हुए हैं कि जिन्होंने नाम सुमिरन और बंदगी पर जोर दिया है। कबीर, नानक, दादू, दीन-दरवेश ये सब ज्ञानी भक्तों की कोटी में आते हैं। वे ध्यानी भी हैं। परंतु वे लोग रूप और गुण के पार पहुंच चुके हैं। उनका ईश्वर निर्गुण है। उस निर्गुण से उसका गहन प्रेम है। अपने साहेब से समर्पित रहना उसका स्वभाव है। वह साहेब अंतरिक्ष में कहीं बसते हैं। वे लोग उस अंतरिक्ष शक्ति से सदा आशीर्वाद याचते रहते हैं। इनमें से कुछ संतो को रहस्यवादी भी कहा है। उन्होंने भगवान का अनुभव कर लिया है परंतु निर्गुण रूप में अपने भीतर ही भीतर कहीं बाहर नहीं। और फिर उस निर्गुण अनुभूति के बाद उसके

बार बार याद करना उनको अच्छा लगता था। फिर उन्हें पुकारें तो क्या नाम से पुकारें? तब किसी ने विभु, सर्वव्यापी, अविनाशी, अजन्मा, अप्रमेय कहा तो किसी ने अलख, निरंजन, साहेब, रबजी आदि कहकर पुकारा। और किसीने कृष्ण, राम, बुद्ध और महावीर कहकर पुकारा।

कबीर ने तो राम आदि ऐतिहासिक सगुण नामों को भी निर्गुण के अर्थ में पुकार कर उसकी सर्वव्यापकता के साथ अनुसंधान किया है। कबीर कहता है कि

एक राम घट घट में बैठा

कबीर का सीधा नाता इस घट घटवासी से है, नित्य से है। कुछ संत उसे मालिक या परवरदिगार कहकर पुकारते हैं। सच कहूँ तो ये ध्यान विधि मेरी कुछ मन पसंद विधियों में से एक है। वैसे तो सब विधियाँ अच्छी हैं। हर विधि साधक को मुक्त करने में मदद करती है। परंतु मैं निर्गुण को केन्द्र में रखकर उसे खूब याद करती हूँ। उसकी याद में रोना, हँसना, नाचना, मूर्छित होना ऐसी कई दशाओं से मैं गुजर चुकी हूँ। और स्मरण करते करते उसकी असीम क्षमता के बारे में जो भी स्मरण होता है वो कभी भजन, कभी कव्वाली, कभी नज़्म तो कभी दोहे या गज़ल बनकर उतरते हैं।

मेरे परवर दिगार
मेरे परवर दिगार
रैन में चांदनी ..... मेरे परवर दिगार
दिन में रोशनी ..... मेरे परवर दिगार
धूप और छांव में ..... मेरे परवर दिगार
घुंघरू पाँव में ..... मेरे परवर दिगार
सर्द झोंका हवा का ..... मेरे परवर दिगार

दर्द मीठा फना का ..... मेरे परवर दिगार

जिस्म में रूह तू ..... मेरे परवर दिगार
ज़हन में इश्क तू ..... मेरे परवर दिगार
इश्क की आबरू ..... मेरे परवर दिगार
दम बदम रूबरू ..... मेरे परवर दिगार
एक ही आरजू ..... मेरे परवर दिगार
एक ही जुस्तजू ..... मेरे परवर दिगार

खून में लाली तू ..... मेरे परवर दिगार
बदरिया काली तू ..... मेरे परवर दिगार
बदरी में कहेकशा ..... मेरे परवर दिगार
गुल कोई महकता ..... मेरे परवर दिगार
रंग हिना का है ..... मेरे परवर दिगार
संग खुश्बू का है ..... मेरे परवर दिगार

शाम का रंग तू ..... मेरे परवर दिगार
तीतली की पंख तू ..... मेरे परवर दिगार
जुगनु में ज्योति तू ..... मेरे परवर दिगार
सीप में मोती तू ..... मेरे परवर दिगार
मिलन की बात तू ..... मेरे परवर दिगार
वस्ल की रात तू ..... मेरे परवर दिगार

मेरे परवर दिगार
मेरे परवर दिगार

प्यारे साधको!

यह उस परम परमात्मा की नित्यता है और व्यक्तिगत आत्मा की भी। साधक उस अव्यक्त को स्मरते स्मरते उसका बन जाता है। भरोसा

दृढ हो जाता है। और फिर तो वह अज्ञात ही उसका सर्वस्व है। ऐसी प्रतिपल अनुभूति के साथ एक निर्भयता प्राप्त होती है।

इस संदर्भ में मेरा एक सूफी भजन याद आ रहा है –

तेरा रखवाला ऊपरवाला – ५

हिना में रंग कली में नजाकत ग़ुलों में खुश्बू भरता है
हवा के ज़रिए तेरी सांस में हर पल पिघलता है
तेरी आवाज़ और अल्फाज़ बनकर बोलता भी है
तेरी रूह में कभी वो बनके मस्ती नाचता भी है

वो है सबसे बड़ा दिलवाला...४
तेरा रखवाला ऊपरवाला

बात को मान ले
उसको पहचान ले
रूबरू जान ले
दिल में तू ठान ले
कोई शक ना रहे
कोई डर ना रहे
कोई ग़र ना रहे
कोई दर ना रहे
फिर भी वो साथ है
बहुत ही पास
यकीन की बात है
क्यों तू उदास है

बंदा बन जा उसीका मतवाला – ४
तेरा रखवाला ऊपरवाला

आग पानी मिला दे
उसे चमडी से बांधे

हवा और आसमां से
मिट्टी में जान डाले
संग से नदिया छोड़े
हवा के रुख को मोड़े
किसीका दिल ना तोड़े
सबकी रग रग में दौड़े
जर्रों में जान फूंके
उसकी खलकत न रुके
करम करना ना चूके
औलिया संत झुके
हर बंदा उसीका प्याला

तेरा रखवाला ऊपरवाला

श्रद्धा और ज्ञान के साथ अपार प्रेमपूर्ण हृदयवान साधको के लिए नित्यभाव ध्यानविधि एक अद्‌भूत परिणामदायी बनती है।

प्यारे साधको!

एक दूसरे प्रकार के लोगों के लिए भी यह ध्यान विधि उपयोगी है। जिन लोगों को ध्यान भी करना है और हृदय प्रेम से भरपूर है परंतु सगुण भक्ति के नाम पर दुनियां के धार्मिक दुकानों में चलते हुए नाटकों को देखकर मंदिरों में से अथवा ईश्वर के सगुण स्वरूप में से उसकी आस्था शून्य हो चुकी है। वे जानते हैं कि कोई अज्ञात शक्ति ही मेरी और विश्व की रक्षा कर रही है। परंतु वे लोग पत्थरों को नहीं पूज सकते। अभी वे प्रेमपूर्ण होने पर भी इतने सरल या उदार नहीं बन पाए हैं। अभी उनकी इतनी क्षमता विकसित नहीं हो पाई है कि वे कण कण में उसका दर्शन करें। ऐसे लोगों के लिए यह नित्य भाव ध्यान विधि उत्तम है।

दोस्तो! यदि आप सगुण को भगवान के रूप में नहीं स्वीकार सकते हो, स्थूल में सूक्ष्म को नहीं देख सकते हो, तो कोई बात नहीं। प्रेम तो प्रेम है। निर्गुण को आराधो, नर्गुण को प्रेम करो। वह आपको आपके लक्ष्य तक पहुंचा देगा। मैंने कुछ दोहे लिखे हैं, इसमें कहा है कि

सुमिरन मेरी साइबी, सुमिरन मेरा धन।
सो तन मन अन्न धन्य है "मोहिनी" जो सुमिरन।।

प्यारे साधको!

यहाँ कोई तस्बी या माला पकड़कर बैठने की बात नहीं है।

सुमिरन कोई क्रिया नहीं, वह हिरदय का भाव
"मोहिनी" भाव न जागियो, तो अनुभव का अभाव।।

दोस्तो, भावपूर्ण हृदय से उस नित्य तत्व के साथ अनुसंधान सधने से मन सहज ही निर्विकल्प हो जाता है। वह स्थिर हो जाता है। एक अर्थ में अमनी स्थिति का निर्माण होता है। क्योंकि पूरी ऊर्जा उस नित्यतत्व के सुमिरन की ओर मुड़ गई। फिर तो सुमिरन भी सहज हो गया। इस अवस्था को विज्ञान भैरव तंत्र अनुसंधान कहता है।

सुमिरन जो करना पड़े, वह तो सुमिरन नाहि।
""मोहिनी" सहज सुधी रहे तब वह प्रेम कहाई।

दोस्तो, ऐसा प्रेम कभी बंधन नहीं बनता।

सुमिरन बाधक ना बने, प्रेम न बंधन होई।
"मोहिनी" कोटिक जीव में मरम को जाने कोई।।
सुमिरन में तू जोड़ना तार पियु के संग।
मन से दो भासे भले "मोहिनी" दोऊ इक रंग।।

और मेरे अनुभव के बाद में आगे कहती हूँ कि

"मोहिनी" जप तप जोग से रिद्धि सिद्धि बहु आई।
सुमिरन से पियु पाइयो, कहत हूं ढोल बजाई।

प्यारे भक्तो!

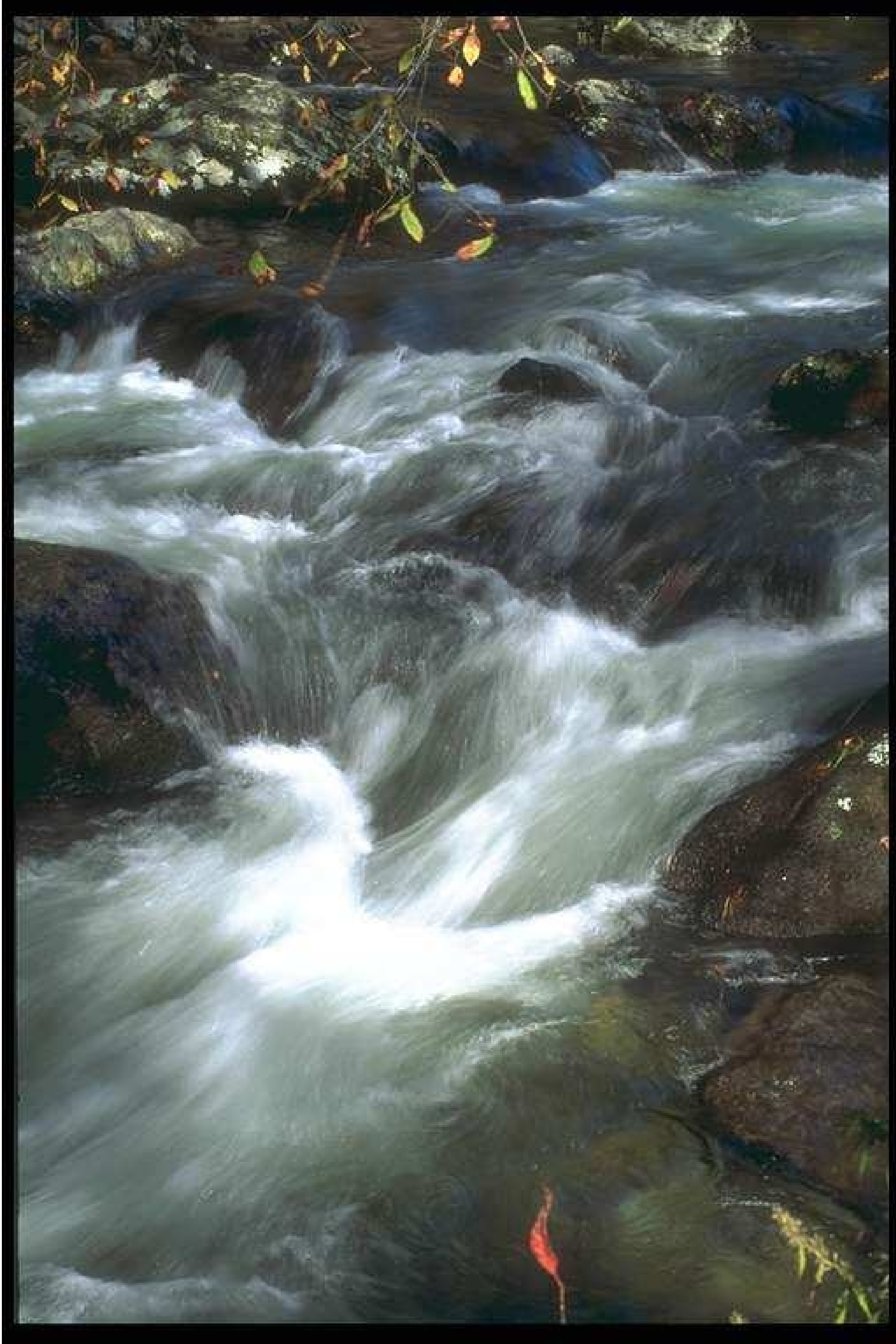
तंत्र और योग विद्याओं से अनेक प्रकार की रिद्धि सिद्धि की प्राप्ति हो सकती है। परंतु मैं तो स्वानुभव से कहती हूँ कि उस नित्य के साथ सीधा अनुसंधान होने से उसकी ही प्राप्ति हो जाती है। फिर पाने को क्या बचा! ऐसे सुमिरन को ज्ञान कहो, ध्यान कहो या प्रेम कहो; कोई फर्क नहीं पड़ता।

दर्शन मिलन और मिटना सब सुमिरन में भाई
"मोहिनी" मर्म समझाइयो जागे तो समझाय।।

प्यारे साधको!

लगता है कि विधि बहुत सरल है परंतु मन का स्वभाव है कि वह आपको इधर उधर भटकाता रहता है। आप अनुसधान जोड़ने को यत्न करते हो और वह अनुसंधान तोड़ने पर तुला है। ऐसी स्थिति में आपको स्थिर और अडिग रहना है। चित्त की समग्र शक्ति को उस नित्य के संग जोड़ने का प्रयत्न करो। मन की ओर लक्ष्य ही न दो। मन के प्रति लक्ष्य देंगे तो अनुसंधान भंग होगा। लक्ष्य देंगे तो उपेक्षा भी करनी पड़ेगी। ध्यान ही मत दो। ताकि लक्ष्य या दुर्लक्ष्य का प्रश्न ही न खड़ा हो। और दोस्तो अपनी एकनिष्ठा और निरंतर उस नित्य की स्मृति से उस व्यापक, ब्रह्म, निरंजन, निर्गुण, विगत, विनोद, अजन्मा और अविनाशी का अनुभव कर लो।

सुमिरन जब अखंड भया तो सहज समाधि आय।
योग के सब अंग "मोहिनी" सुमिरन में ही समाय।।



धारणा - 120

सदामुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 120

मैं मुक्ति बंधन से मुक्ता, प्रति पल ब्रह्मानंद से युक्ता।
बंधन आदि मिथ्या भय है, निज रूप कालातीत निर्भय है।
अस बिचारी साधक मन जोड़ो, निज रूप मिथ्या बंधन तोड़ो।।

ध्यान विधि - 120

मैं बंधन और मुक्ति दोनों
से मुक्त हूँ -

ऐसा दृढ भाव करके
ब्रह्मानंद में विचरण करके
मिथ्या बंधनों को तोड़ दो



आपको ऐसी तीव्र धारणा करनी है कि मैं बंधन और मुक्ति से मुक्त हूँ मैं सदा मुक्त हूँ मतलब पहले से ही मुक्त हूँ। मैं तो विशुद्ध ब्रह्म हूँ। जिसे देश काल का कोई बंधन नहीं। जिसे कोई स्थान और वातावरण स्पर्श कर सकता है उसे बंधन की स्थिति होती है। जो स्थूल है उसे बांधा जा सकता है और मुक्त किया जा सकता है। मैं तो सूक्ष्म हूँ, चिन्मय मात्र हूँ, चिदानन्द हूँ। सूक्ष्म को बांधने का कोई उपाय नहीं है।

प्रिय साधको!

अब एक बड़ी सुंदर ध्यान विधि की तरफ हम जा रहे हैं। इस विधि का मैंने नाम दिया है – सदामुक्ति भाव।

नाम से ही विधि समझ में आ जाएगी। परंतु दृढ धारणा अनिवार्य है। आचार्य शंकर आत्मषटक में यही धारणा करते हैं। इस बात से सिद्ध होता है कि कोई भले कितना भी ज्ञानी हो परंतु ध्यान उसकी नींव है। ध्यान तो अनिवार्य है।

इस विधि में आपको धारणा करनी है कि मैं सदा मुक्त हूँ, चिन्मय स्वरूप हूँ, सत्यरूप हूँ, और सत्यज्ञान को देश, काल आदि का बंधन न होने के कारण मैं किसी से भी बंधा हुआ नहीं हूँ। मुक्ति की आवश्यकता तो उसको होती है जो बंधन में है। परंतु जहां बंधन ही नहीं तो मुक्ति की क्या जरूरत? मैं तो सदा मुक्त ही हूँ। और दोस्तो, आप वास्तव में मुक्त हो। जितने भी बंधन है वे सब मान लिए हुए हैं। वास्तविक नहीं हैं।

प्यारे साधको!

आपका वास्तविक स्वरूप तो सदामुक्त है। परंतु लंबी विस्मृति के कारण आपको यह बंधन मुक्ति की उधेड़–बुन करनी पड़ती है। दोस्तो, लंबी विस्मृति का अर्थ क्या है? आप कोई दो पांच दिन से नहीं भूल गए हैं कि आप मुक्त हो। परंतु इस बात को आप जन्म जन्मांतर से भूल गए हो। कम से कम जन्मजात भूलकर ही यहाँ आए हो। बंधन का अभ्यास पक्का हो गया है। जिसका अभ्यास पक्का होता है उसी तरफ मनुष्य की गति होती है।

माँ के गर्भ के नौ मास के बंधन में आपको बंधन का अभ्यास करा दिया है। आप बंधन के व्यसनी हो गए हो। फिर गर्भ से मुक्ति हुई परंतु मनुष्य संसार के बंधनों से बंधता गया। जरूरतों से बंधता गया। फिर अपने मन से बंधता गया। फिर अपनी इच्छाओं से बंधता गया। फिर अपने कृत्यों से बंधता गया। और इस तरह बंधन इतना गाढ़ा हो गया कि मुक्ति के लिए मनुष्य व्याकुल हो रहा है।

परंतु याद रहे यह व्याकुलता भी प्रमाणिक नहीं है। अगर प्रमाणिक होती तो वह प्रमाणिकता से साधना में लग जाता। प्रश्नों की उत्तरों की बाबाओं की, धर्मस्थानों की या चमत्कारों की जरूरत नहीं है। दोस्तो, यह तो एक अनुभव सिद्ध बात हो गई कि बंधन है, तो दूसरा सिद्धांत भी अपने आप लागू हो गया कि मुक्ति भी है। और याद रहे अगर मुक्ति है तो कहीं न कहीं बंधन भी जरूर है।

प्यारे साधको!

बंधन और मुक्ति दोनों एक दूसरे के विपरीत नहीं हैं। एक ही डोर के दो छोर हैं। एक छोर पर बंधन दूसरे छोर पर मुक्ति। बंधन में अगर

जीव आया अथवा बंधन को मानसिक रूप से बंधन मान लिया तो मुक्ति तक की मुसाफिरी करनी अनिवार्य हो गई। आपने भले एक ही छोर पकड़ा है परंतु दूर भी कहीं दूसरा छोर अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ है।

अगर बंधन है तो मुक्ति की खोज आज नहीं तो कल भी रहेगी। परंतु आदमी स्वयं के साथ भी प्रमाणिक नहीं है। वह बंधन से छूटना जरूर चाहता है। परंतु खुद के पुरुषार्थ से नहीं। मैंने ऐसे तथाकथित लेखकों को देखा है कि पुस्तक किसी और के पास लिखवाता है और सर्जक में नाम अपना छपवाता है। परंतु याद रहे! मुक्ति का यश इतना आसान नहीं है। बंधन में से आप अगर वास्तविक रूप में छूटना चाहते हैं तो स्वयं के पुरुषार्थ से छूट पाएंगे। आदमी प्रतीक्षा करता है कि कोई उसे बंधन से छुड़ाए।

दोस्तो, यह इस दुनिया की कोर्ट नहीं कि यहाँ कोई आकर जमानत करा दे और आप छूट जाएं। अस्तित्व का थाना ऐसा है कि उसमें आप स्वयं ही कैद हो सकते हो और स्वयं ही छूट सकते हो। अगर आप ऐसा चाहो कि कोई बाबा, कोई मंत्र, कोई मन्नत, कोई विद्या, कोई तावीज आपको बंधनों से मुक्त कर दे तो वह केवल मूढ़ता है। और तथाकथित साधुबाबा ऐसे असंख्य मूढ लोगों का भरपूर लाभ उठाते हुए रोज ब रोज; आप टी.वी. प्राग्रामों में देखते हैं।

प्यारे साधको!

अगर मनुष्य ने एक छोर पकड़ लिया तो दूसरे छोर तक उसको ही यात्रा करनी पड़ेगी। यह एक आध्यात्मिक यात्रा है। जिसे आपके बदले और कोई नहीं कर सकता। यह तो एक आत्मजागृति का अभियान है। जो अपने अंदर ही अंदर बिना किसी दिखावट या नारा लगाए। निरंतर

चलता रहता है। परंतु मनुष्य इतना ढीठ हो गया है कि वह खुद ऐसी यात्रा से गुजरना नहीं चाहता। वह तो चमत्कार चाहता है।

दोस्तो, आज का आदमी कुछ ज्यादा चालाक हो गया है। परंतु वह चालाकी उसके ही मार्ग में बाधा बनकर बैठ गई है। बाकी आप जितना मानते हैं बात उतनी कठिन नहीं है। दूसरे छोर पर पहुंच जाने के बाद बात खत्म हो जाती है। नदी पार हो गए। पहले दो किनारे थे नैय्या दूसरे तट पर आ गई। अब कोई तीसरा किनारा नहीं है।

जिसने नदी के प्रवाह को स्वयं पार करने के लिए अपनी जान फूंक दी हो, सामने वाले तट पर पहुंचने के लिए जो जी जान से खेल चुका हो और उसकी गंभीरता को जान ली हो वह दुबारा पहले वाले तट पर आना नहीं चाहेंगे। मुक्ति के छोर पर पहुंच जाने के बाद वह तटस्थ हो जाएगा।

जो साक्षी बन जाता है वह फिर बंधन में पड़ने की इच्छा नहीं करता। एक छोर से दूसरे छोर की यात्रा पूरी कर लेने के बाद ऐसी कोई इच्छा बचेगी भी नहीं। परंतु आदमी ऐसा नहीं करना चाहता। वह तो सस्ती मुक्ति चाहता है। इतनी सस्ती कि घी, तेल , नारियल, चुंदड़ी, कुमकुम, छोटी-बड़ी बलि और ज्यादा से ज्यादा थोड़ा धन फैंकने से मुक्ति मिल जाए। वास्तव में चालाक मन अपने दुःखों से टाइमबीइंग मुक्ति चाहता है। वे सारे बंधनों से मुक्त होना नहीं चाहता। उन्हें तो एक लिस्ट करके रखा है। उनमें से वह कुछ बंधनों को बनाए रखना चाहता है। कुछ बंधनों को बढ़ाना भी चाहता है और अप्रिय बंधनों से मुक्ति।

प्यारे साधको!

अध्यात्म जगत में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। यह कोई अनाज किराणे की दुकान नहीं है कि जहां आपको मुक्ति के नमूने देखने को मिले। वहाँ बारगेनिंग की भी कोई जगह नहीं है। वहाँ तो दो ही छोर हैं – या तो बंधन में जिओ अथवा मुक्त हो जाओ।

खैर! मूल विषय की ओर आईए। शिव त्वरित मुक्त होने की एक अद्‌भुत विधि दे रहे हैं। यह विधि शीघ्र परिणाम दे सकती है। वहाँ घटना अचानक घट सकती है। तंत्र की यही शक्ति है। केवल आपका आत्मबल दृढ होना चाहिए। शिव सीधे ही आपको बाह्यं जगत से आत्म जगत की ओर ले जाते हैं। तंत्र कहता है कि आप जैसे भी हो, जहाँ भी हो भले हो। ज्यादा चिंता मत करो। आप बरसों पुराने अपनी जीवन शैली बदलने जाएंगे तो बहुत लंबा पड़ जाएगा। यह अभ्यास आपके लिए कठिन हो जाएगा।

प्यारे साधको!

योग के अनुसार एक एक नकारात्मकता को जीवन में से कम करते जाएंगे तो बहुत समय लग जाएगा। कभी कभी जाग्रति के अभाव में एक बात बदल पाओगे परंतु दूसरी दो अनावश्यक बातें आपमें प्रवेश भी कर सकती हैं। और इस संदर्भ में ही मैं कहती हूँ कि योग से तंत्र बेहतर है। तंत्र सीधा सीधा आपके अंतरजगत के साथ आपके रसायणों के साथ आपके कोन्सियस के साथ काम करता है। और बरसों में घटने वाली घटना आपके आत्मबल और साधना की समग्रता के आधार पर क्षण में घट सकती है।

तो प्यारे साधको!

अब लक्ष्य दीजिए विधि की ओर। साथ साथ एक छोटी सी दूसरी बात भी बता दूं। यहाँ जिस तंत्र की बात चल रही है वह आपकी कल्पना के अनुसार का या आपने सुना हुआ मंत्र-तंत्र या मैली विद्या वाला तंत्र नहीं है। मैं जिस तंत्र की बात करती हूँ उनकी विधियों को तंत्र विषयक हर प्रकार के पूर्वग्रहों को छोड़कर समझना। विज्ञान भैरव तंत्र की छोटी छोटी विधि रूपी कूंजियाँ आपके भीतर के तंत्र के साथ सूक्ष्म रूप से काम करती हैं और क्षणों में घटना घट जाती है।

प्यारे साधको!

तो अब धारणा में प्रवेश करो। आपको ऐसी तीव्र धारणा करनी है कि मैं बंधन और मुक्ति से मुक्त हूँ मैं सदा मुक्त हूँ मतलब पहले से ही मुक्त हूँ। मैं तो विशुद्ध ब्रह्म हूँ। जिसे देश काल का कोई बंधन नहीं। जिसे कोई स्थान और वातावरण स्पर्श कर सकता है उसे बंधन की स्थिति होती है। जो स्थूल है उसे बांधा जा सकता है और मुक्त किया जा सकता है। मैं तो सूक्ष्म हूँ, चिन्मय मात्र हूँ, चिदानन्द हूँ। सूक्ष्म को बांधने का कोई उपाय नहीं है।

प्यारे दोस्तो!

जो अपने मूल स्वरूप को ठीक से नहीं समझ सकता वह बंधन और मुक्ति की चिंता करता है। वह भयभीत होता है अज्ञान अवस्था में, अजाग्रतावस्था में बंधन और मोक्ष की कल्पना है। माया के वश जीव स्वयं को बांधा हुआ मान लेता है और सुख दु:ख के बंधन में जीता है तथा मेरा और तेरा जैसे द्वैत भाव में जीता है।

वेद स्पष्ट कहता है कि भय तो वहाँ है जहाँ कोई दूसरा है। परंतु जहाँ अन्य है ही नहीं फिर भय कैसा? पंछिओं को उड़ाने के लिए खेत में खड़े किए गए पुआल के पुतले से पंछी डरते हैं, बलवान हाथी नहीं। इसी तरह जिसका तत्व में प्रवेश हो गया। जिसने सत्य को जान लिया उसे मोक्ष के लिए किसी भी प्रकार का प्रयत्न करने की क्या जरूरत?

प्यारे दोस्तो!

बंधन का स्वीकार और भय मनरूपी चंचल पंछी ने कर रखा है। और मुक्ति का विचार बेचारी बुद्धि करती है। बुद्धि की शक्ति तो सीमित है। उसकी समझ कच्ची हो सकती है। साधक को ऐसा बोध रखना है कि जैसे जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब उलटा दिखता है इसी तरह मन बुद्धि अपने ही बारे में उल्टा सोच सकती है कि मैं बंधा हुआ हूं, मुक्त नहीं हूँ, त्रस्त हूँ, दुखी हूँ, सुखी हूँ इत्यादि।

परंतु इससे मुझे क्या? यह तो मन और बुद्धि का खेल है। सिर्फ जल तरंग जैसा वहाँ कुछ भी सत्य नहीं है। परछाई उल्टी हो जाने से कभी सूरज उल्टा हो सकता है? प्रकाश तो प्रकाश है। वह न सीधा है ना टेढा। वह सिर्फ प्रकाश है।

दोस्तो, इसी तरह आपको भी धारणा करनी है कि मैं न तो मन हूं न बुद्धि, न शरीर न इन्द्रियाँ। मैं तो शुद्ध, बुद्ध, नित्यमुक्त और चिरंतन हूँ। मैं तो आनंद का भंडार हूँ। और यह अवस्था तो मन के पार की है। तो मन, बुद्धि या चित्त ने की हुई कोई भी धारणा मुझे लागू नहीं हो सकती।

प्यारे साधको!

इस तरह भयजनक और कमज़ोर कल्पनाओं को छोड़कर तथा संशय भरी बुद्धि के पार जाकर सीधे कूद पड़ो सत्य में। प्रवेश कर लो

अपने स्वाभाविक रूप में और वहाँ स्थिर होते होते दृढभाव हो जाओ कि मैं तो सदा से मुक्त ही हूँ। ध्यान में स्थिरता आते ही सारे बंधन स्वतः टूट जाएंगे। और आप स्वयं को एक नए रूप में पाओगे।



धारणा - 121

स्वस्थित भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 121

"स्व" में स्थिर बनी स्वस्थ बनो साधक, सुख दुख रोग बने नहीं बाधक।
अस प्रवेश चिदानन्द में पाओ, देह धर्म से पर हो जाओ।।

ध्यान विधि - 121

"स्व" स्वरूप में स्थिर बनकर सुख-दुःख के पार चले जाओ।



यह साधना निरंतरता से पूर्णभाव से और समग्रता से होनी चाहिए। तभी आप सफलता को उपलब्ध हो पाएंगे। यह कोई हॉबी नहीं है, शौक का विषय नहीं है, कोई खेल नहीं है कि कभी खेला कभी नहीं खेला; यह तो निरंतर ध्यान के द्वारा स्वस्वरूप का दर्शन है। इसलिए आपको ध्यान को समर्पित होना पड़ेगा। स्वयं के प्रति स्वयं को समर्पित करना पड़ेगा। बात अजीब लगेगी। लेकिन ध्यान स्वयं में एक अजीब घटना है।

प्रिय साधको!

अब हम जा रहे हैं स्वस्थिर भाव ध्यान की ओर। यहाँ विधि आपको अपने ही स्वरूप में स्थिर होने पर लक्ष्य साधने का विधान बता रही है। शिव कहते हैं कि इन्द्रिय द्वारों से ही सुख-दुःख का संगम होता है। तो इन्द्रियों को त्यागकर आत्मरूप में स्थिर हो जाओ।

दोस्तो, विधि पढ़कर तो लगता है कि बात तो सही है। परंतु इस प्रकार से साधना करना, शिव की वाणी का अनुसरण करना, विधि में प्रवेश करना और धारणा को दृढ करके उसके अनुसार सदा बरतना थोड़ा कठिन लगता है।

इस कठिनता को दूर करने के लिए पहले थोड़ा सत्संग कर लें। मैं हमेशा कहती हूँ कि किसी भी जटिल मुद्दों पर थोड़ा विचार विमर्श करने से अथवा समान धर्माओं या शुभचिंतकों से उस विषय की कठिनाइयों के बारे में कुछ स्पष्टता करने से बात आसान हो जाती है। ग्रंथियाँ खुल जाती हैं।

दोस्तो, विज्ञान भैरव तंत्र में शिव ने तो सिर्फ दो दो पंक्ति के श्लोको में ज्ञान का सागर भर दिया है। परंतु वह कभी कभी इतना गहरा अफाट और अपार लगता है कि साधारण मनुष्य उसमें डुबकी लगाने का साहस नहीं कर सकता। खैर!

प्यारे साधको!

हम एक सीधी बात पर विचार करें। मानो कि आपके पास सुंदर शरीर है। सुंदर इन्द्रियाँ हैं परंतु वे क्रियाशील कैसे होंगी? आत्मा की गैरमौजूदगी में सुंदर से सुंदर शरीर भी डरावना दिखता है। क्योंकि उसमें तुरंत ही शब की कल्पना होने लगती है और वह सत्य भी है। आत्मा की मौजूदगी में ही शरीर और इन्द्रियाँ सुख के कारण बनते हैं और अच्छे लगते हैं।

दोस्तो, आत्मा तो परिशुद्ध चेतना मात्र है। परंतु शरीर और इन्द्रियों का आत्मा के साथ संबंध होने के बाद सभी इन्द्रिय द्वार कार्यांवित होने के बाद मन को और शरीर को सुख और दुःख का अनुभव कराते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि सुख दुख आदि द्वंद्व आत्मा का वास्तविक स्वभाव या धर्म नहीं है। उसका वास्तविक स्वभाव तो है सहज शांति, संतोष और आनंद। सुख-दुःखादि तो इन्द्रियों और मन के द्वारा आरोपित हैं।

दोस्तो, इसीलिए हमारे प्रबुद्ध पुरुष कहते हैं कि सुख-दुःखादि अगर आरोपित धर्म हैं तो उससे छुटकारा पाने के लिए इन्द्रियों का परित्याग कर देना चाहिए।

प्यारे साधको!

कभी कभी दार्शनिक बातें बिलकुल इम्प्रेक्टिकल लगती हैं वास्तव में ऐसी बातें गूढ अर्थ में कुछ और ही कहना चाहती हैं। अब जरा सोचिए – जब तक आप जीवित हैं तब तक स्थूल रूप से इन्द्रियों का त्याग करने का कोई उपाय नहीं है, क्योंकि आत्मा, शरीर, इन्द्रियाँ, मन इन सबका संग होकर एक जीवंत शरीर कार्यान्वित होता है। तो इन्द्रियों का त्याग कैसे करें? इन्द्रियों का त्याग करने से तो जीवन अटक जाएगा। तब तंत्र कहता है कि मानसिक रूप से उसका त्याग कर दो। उसका स्थूल कार्य उसे करने दो, जीवन जीते रहो परंतु उसे चिटको मत।

दोस्तो, आपकी मनोदशा पर सबकुछ निर्भर है। चित्त की अवस्था का जीवन में अहम स्थान है। आपके चित्त को अपने मूल स्वरूप में स्थिर हो जाने दो। जब ऐसा होगा तब इनन्द्रियों के मानसिक बंधन, उसका मानसिक आकर्षण और उसका असर इन सबसे आप छुटकारा पा लेंगे।

योग वशिष्ठ में कहा है कि

एते हि चिद्विलासान्ता मनोबुद्धिंद्रियादयः

योग वशिष्ठ संसार के अनुभवों से मुक्ति पाने के लिए और परमान्द का अनुभव पाने के लिए सात भूमिकाएं बताते हैं। प्रयत्नशील साधक कम समय में कई प्रश्नों से पार उतर सकता है। यहाँ साधकों का हौसला बढ़ाने के लिए और इस ध्यान में आपका सहजता से प्रवेश हो इसलिए आपको प्रेरित करने के लिए मैं सातों भूमिकाएं संक्षेप में बता रही हूँ।

१. शुभेच्छा

२. विचारणा

३. तनुमंसा
४. सत्वापत्ति
५. असंसक्ति
६. पदार्थाभावनी
७. तूर्यगा

प्रिय साधको!

मैं कई बार कहती हूँ कि ध्यान और योग लक्षी कुछ बातें समझाने के लिए मेरे नहीं चाहने पर भी कुछ खास शब्दावलियों का मुझे प्रयोग करना पड़ता है। ऐसा करना अनिवार्य है। मैं बात को कितनी भी सरल करने की कोशिश करूं तो भी कुछ परंपरागत शब्दों को जानना आध्यात्मिक अनिवार्यता बन जाती है। मैं कहती हूँ कि आप भी भाषाकीय प्रमाद से ऊपर उठकर इन शब्दों के प्रति थोड़ा लक्ष्य दें।

१. **शुभेच्छा** – संसार से विरति हो जाने पर मनुष्य जब स्वयं के अज्ञान का स्वीकार करके शास्त्र और संतों का संग करके सत्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करता है, तब उस अवस्था का नाम, शुभेच्छा है।

२. **विचारणा** – शास्त्र और सज्जनों के संग में वितराग और सदाचार में साधक प्रवृत्त होता है तब उस अवस्था को विचारणा कहते हैं।

३. **तनुमंसा** – शुभेच्छा और विचारणा के अभ्यास से इन्द्रियों के विषय में अनासक्ति होने से मन के सूक्ष्म हो जाने को तनुमंसा कहते हैं।

४. **सत्वापत्ति** – पूर्व तीनों भूमिकाओं के अभ्यास से और चित्त के विषयों से पूरी तरह विरक्त हो जाने से आत्मरूप में स्थिर हो जाने का नाम है, सत्वापत्ति।

५. **असंसक्ति** - चारों भूमिकाओं की परिपक्वता को बाद जब मन में पूर्ण रूप से असक्ति उत्पन्न होकर आत्मतत्व में दृढ़ भाव प्राप्त होने की अवस्था असंसक्ति है।

६. **पदार्थभावनी** – पहले की पांचों भूमिकाओं के अभ्यास से और आत्माओं में निश्चल स्थिति हो जाने से जब बाहर और भीतर की वस्तुओं के अभाव की स्थिति को पदार्थभावनी कहते हैं। जब लंबे अर्से तक दृढ़ भाव से ऐसा अभ्यास किया जाए कि केवल आत्मा की ही सत्ता है और पदार्थों की असत्ता है तब ऐसा भाव दृढ़ होने से इस अवस्था की प्राप्ति होती है।

७. **तूर्यगा** – पूर्व की छः भूमिकाओं के अभ्यास से पदार्थों का और इन्द्रियों का अनुभव न होने से अपने असल स्वरूप में हमेशा हमेशा के लिए स्थिर रहने का नाम तूर्यगा है।

प्यारे साधको!

बेशक ऊपर की शब्दावली आपको कठिन लग सकती है तो साधना कितनी कठिन होगी! परंतु पलायन नहीं करना है। तंत्र आपको कुछ ऐसी कुंजियाँ दे देता है कि जिसका प्रयोग करने से कठिन बात भी सरल होने लगती हैं।

दोस्तो, वैसे भी ध्यान साहसी मनुष्य का काम है। साधारण लोग तो मूर्ति, डंके और तिलक पूजा से तुष्ट रहते हैं। उसमें स्वयं से साक्षात्कार करने की क्षमता ही नहीं है। इसलिए तो वे बहिर्मुखी बने रहे हैं। खैर!

ऊपर जिन सोपानो को बताया है, जिन भूमिकाओं का वर्णन किया है उसके अनुसार ध्यान के द्वारा उसमें स्थिर हो जाओ। साधना की ऊंचाईयों पर पहुँचते पहुँचते जब आप शिखर तक पहुँच जाएंगे तब सुख-दु:ख रोग आदि आपकी स्थिरता में बाधक नहीं बनेंगे। आप अनुभव करेंगे कि इन्द्रियों का विलास शून्य हो गया है और केवल चिद्विलास की ही सत्ता है।

दोस्तो, प्रतिपल आत्मस्वरूप की अभिव्यक्ति का अनुभव होने से मन, बुद्धि और इनन्द्रियों का खेल समाप्त है जाएगा। यही है आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाना। यही है स्थित प्रज्ञावस्था।

परंतु यह साधना निरंतरता से पूर्णभाव से और समग्रता से होनी चाहिए। तभी आप सफलता को उपलब्ध हो पाएंगे। यह कोई हॉबी नहीं है, शौक का विषय नहीं है, कोई खेल नहीं है कि कभी खेला कभी नहीं खेला; यह तो निरंतर ध्यान के द्वारा स्वस्वरूप का दर्शन है। इसलिए आपको ध्यान को समर्पित होना पड़ेगा। स्वयं के प्रति स्वयं को समर्पित करना पड़ेगा। बात अजीब लगेगी। लेकिन ध्यान स्वयं में एक अजीब घटना है।

प्यारे साधको!

निरंतर आत्मस्वरूप का भाव करो उसका ही ध्यान करो। और परिणाम रूप देहधारी होने पर प्रवेश कर लो विदेहावस्था में और सहज ही देह में रहते हुए भी देहधर्मों से पार हो जाओ।

धारणा - 122

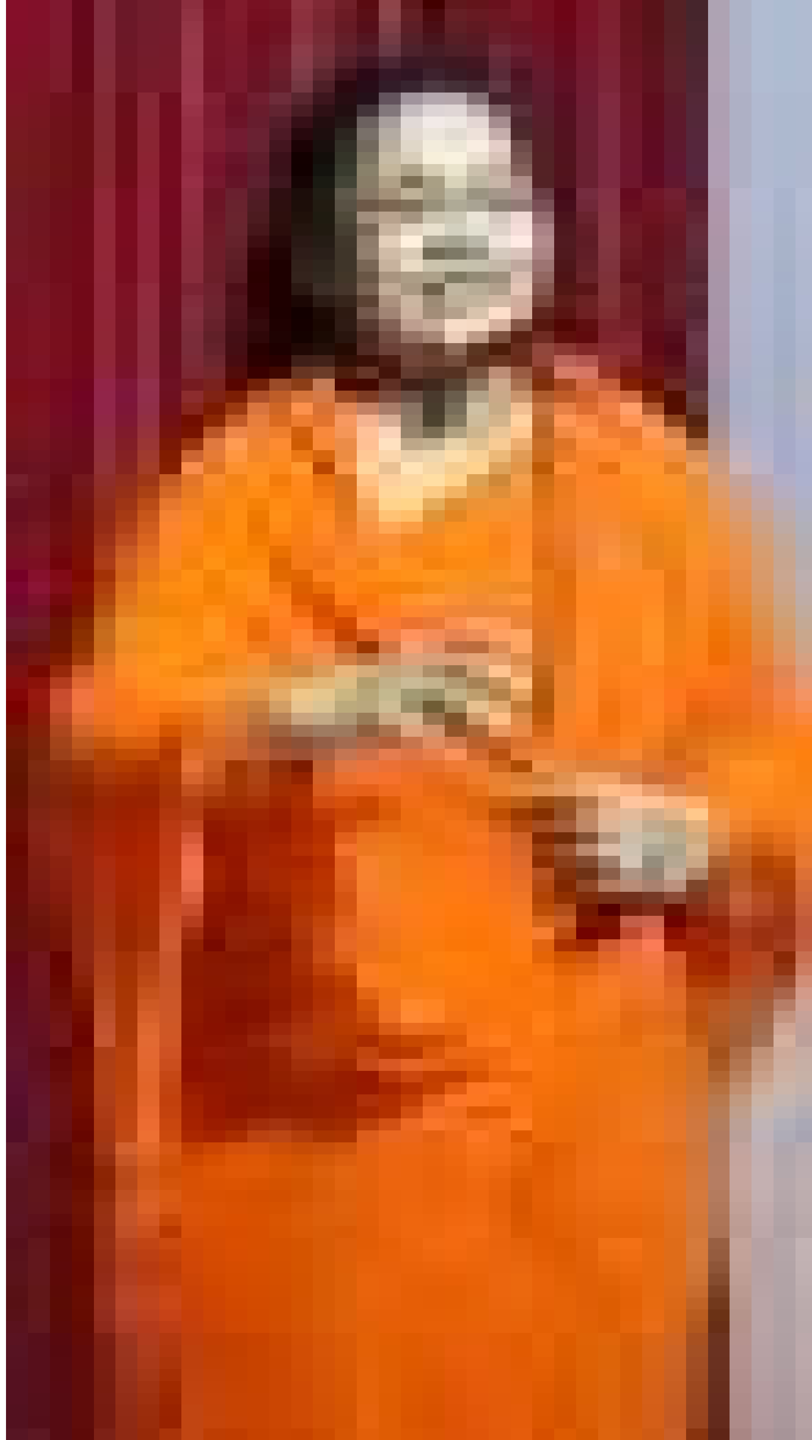
सर्वेश्वर भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 122

ज्ञान है ईश्वर ज्ञाता ईश्वर, ज्ञेय पदार्थ भी भासे ईश्वर।
परम ज्ञान अस प्रसरे भाई, तब साधक ईश्वर में समाई।।

ध्यान विधि - 122

ज्ञान, ज्ञाता और ज्ञेय पदार्थ सबकुछ ईश्वर है, ऐसा समझकर परमज्ञान में प्रवेश कर लो ।



उस सर्वेश्वर का ध्यान करते करते समा जाओ ऐसे ब्रह्म में जो सर्व जीव की हृदय गुफा में असंख्य मुख शरीर और ग्रीवा को धारण करके बसते हैं। समा जाओ उस प्रकाश में और ऐसे समाओ कि फिर उस प्रकाश का कभी अस्त न हो, जहाँ फिर से अंधेरा छा न पाए।

प्रिय साधको!

विधि को समझने के पहले थोड़ी विचारणा हो जाए। ज्ञान शब्द हमारे शास्त्र में कई अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। ज्ञान का अर्थ है परमात्मा, ज्ञान का अर्थ है विवेक, ज्ञान का अर्थ है अनुभूति, ज्ञान का अर्थ है विरति, ज्ञान का अर्थ है विद्वता, ज्ञान का अर्थ है सही समझ, ज्ञान का अर्थ है शास्त्र ज्ञान और ज्ञान का अर्थ है सत्य।

जब एक ही शब्द स्वयं में अनेक अर्थों को समाए रखता है तब ऐसे किसी शब्द के आने पर हमें विशेष सजगता से चर्चा करनी पड़ती है। क्योंकि सामान्य मनुष्य खास बातों में ही खास लक्ष्य नहीं देता और इतना सोच भी नहीं सकता।

अध्यात्म मार्ग सुन्दर, सही और अद्‌भुत होने पर भी पता नहीं कुछ लोग तथाकथित धार्मिक बनकर संतुष्ट हो लेते है। और अध्यात्म से फासला रखते हैं। आखिर क्यों दूर भागता है आदमी अध्यात्म से। शायद उन्हें खुद पर भरोसा नहीं है। वह सत्य के साक्षात्कार से घबराता है। मुझे

कभी कभी विचार आते हैं कि जो खुद से घबराते हैं वह दूसरों से कितने घबराते होंगे। और मृत्यु से???

प्यारे भक्तो!

ऐसे भीरू लोग ध्यान से दूर भागते हैं कि यह तो निर्भय होने का मार्ग है। वे लोग इसलिए ध्यान से दूर भागते हैं कि उन्हें उनकी नजरों के सामने उनकी भीतरी नग्नता को ध्यान खुला करके रख देता है। उसे देखकर आदमी घबरा जाता है। स्वयं को बदलना अनिवार्य लगने लगता है। अगर न बदले तो विशेष भयभीत होकर अपराध भाव से भर जाता है। और अगर बदले तो अपराध की दुनियां छोड़नी पड़ती है। बेचारे दोनों स्थिति में दुःखी है। ऐसे लोग कभी कभी खुद को भी ठग लेते हैं। वे लोग अध्यात्म के भ्रम में ज्यादा से ज्यादा ध्यान का नाटक कर सकते हैं। ध्यान नहीं। ऐसे लोगों के साथ कुछ नहीं हो सकता।

हाँ, एक संभावना है। कभी कभी छोटी छोटी बातों से बड़ी बड़ी घटना घट जाती हैं वैसे ही ध्यान विधियाँ बताने के दौरान मैं बीच बीच में थोड़ा सत्संग कर रही हूँ। उससे शायद थोड़ा रूपांतर आ सकता है।

खैर, हम बात कर रहे थे ज्ञान की। हमें जाना है सर्वेश्वर भाव ध्यान की ओर। परंतु पहले थोड़ी भूमिका अनिवार्य है। विज्ञान भैरव तंत्र में पाणिनी व्याकरण के आधार पर ज्ञान शब्द का प्रयोग कर्ता के संदर्भ में किया गया है। और इससे यहाँ ज्ञान का संबंध सीधा सर्वकर्ता, सर्वहर्ता, सर्वभर्ता, सर्वव्यापी, सर्वज्ञ और सर्वेश्वर परमात्मा के अर्थ में ही लेना है।

विधि कहती है कि जगत में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब ज्ञान स्वरूप परमात्मा से ही प्रकाशित है। जो भी वस्तु का हमें ज्ञान

होता है अथवा जो भी चीजों को हम जान सकते हैं वह उस ज्ञान प्रकाश से ही संभव है।

दोस्तो, संस्कृत में दो शब्द हैं – वेद्य और वेदक। वेद्य का अर्थ है जो जान जाता है और वेदक का अर्थ है जिसके द्वारा जाना जा सकता है। अर्थात विश्व की सभी वेद्य वस्तुएं वेदक अर्थात आत्मा अथवा परमात्मा से प्रकाशित होती हैं। उसकी शक्ति के बिना इन्द्रियाँ कुछ भी नहीं कर सकती। तब बात स्पष्ट है कि परमात्मा की सत्ता ही सर्वोपरि है।

तत्वचिंतक कहते हैं कि वेद्य वस्तुओं की भी वेदक के समान ही महत्ता है। क्योंकि अगर वेद्य वस्तुएं नहीं होती तो परमात्मा किसे प्रकाशित करते? इससे साबित होता है कि वेद्य वस्तुएं ही वेदक परमात्मा को स्वरूप और महिमा प्रदान करती हैं।

मैं कहती हूँ कि दोनों परस्पर के पूरक हैं। एक अर्थ में जाना हुआ बताने वाले से और बताने वाला जाने हुए के कारण है। अगर कुछ अनुभव में आता ही नहीं, कुछ दिखाई देता ही नहीं तो कौन मानता परमात्मा को! इसलिए सूक्ष्म अर्थ में दोनों एक ही हैं। हाँ, दृश्य और दृश्य का दर्शन कराने वाले में सूक्ष्म और विराट का भेद हो सकता है बाकी कोई भेद नहीं है।

प्यारे साधको!

अब आप समझ जाएंगे कि प्रकाशमान वस्तु प्रकाश से भिन्न नहीं है। और प्रकाश विमर्श से कभी अलग नहीं हो सकता।

संक्षेप में ज्ञान आत्मा से भिन्न नहीं है और शब्दों से जिसका संबोधन किया जा सकता है ऐसी चीजें अर्थात ज्ञेय पदार्थ भी ज्ञान से

(परमात्मा से) अलग नहीं हैं। इस तरह ज्ञान और ज्ञेय की एकता की भावना करने से साधक शीघ्र ही आत्म स्वरूप में प्रतिष्ठित हो सकता है।

प्यारे साधको!

एक अर्थ में परमात्मा पूर्ण ज्ञानरूप, पूर्ण प्रकाशरूप और पूर्ण आनन्दरूप है। और उसकी शक्ति के बिना न किसी वस्तु का ज्ञान होता है और न उस वस्तु का अस्तित्व होता है। इस तरह

ज्ञान ज्ञेय और ज्ञाता - त्रितयो नास्तिवास्तवम्

वास्तव में ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता इन तीनों में से अर्थात जानकारी, जानी हुई चीज और जानने वाला तीनों में से एक का भी अस्तित्व नहीं है। परंतु परमात्मा के प्रकाश के कारण ही यह विश्व भासित हो रहा है।

दोस्तो, इस चिंतन के अनुसार सबकुछ ईश्वर है; ऐसी भावना करने से ध्यानी को यह प्रतीत हो जाता है कि जो ज्ञान है वही ज्ञेय और ज्ञाता है और वह सबकुछ प्रकाशात्मक ईश्वर है।

इस प्रकार सत्य ज्ञान का उन्मेष होने पर साधक ईश्वर रूप बन जाता है।

प्यारे साधको!

कभी कभी कुछ शब्द इतने महत्वपूर्ण होते हैं कि उन्हें पकड़कर चलना पड़ता है। तब थोड़ी देर के लिए बात थोड़ी भारी भी लगती है परंतु अंत में उस बात को सरल बनाने के लिए ही ऐसा किया हुआ होता है। संक्षेप में विधि कहना चाहती है कि ईश्वर स्वयं ज्ञान है। और ज्ञान ही ईश्वर है। ज्ञाता अर्थात जानने वाला भी ईश्वर है। और जिन जिन पदार्थों को हम जान सकते हैं वे सब भी ईश्वर हैं।

जब इस प्रकार का परम ज्ञान साधक के हृदय में उदय होता है तब साधक को एक बात दृढ़ हो जाती है कि विश्व में जो कुछ भी है, सब ईश्वर ही है।

दोस्तो, जो सबकुछ ईश्वर है तो उस सर्वेश्वर की आराधना क्यों न करे? ऐसे ईश्वर के बारे में उपनिषद् कहता है कि –

सर्वानन शिरोग्रीव सर्वभूत गुहाशय
सर्वव्यापी सभगवान तस्मात सर्वगतः शिवः

प्यारे साधको!

उस सर्वेश्वर का ध्यान करते करते समा जाओ ऐसे ब्रह्म में जो सर्व जीव की हृदय गुफा में असंख्य मुख शरीर और ग्रीवा को धारण करके बसते हैं। समा जाओ उस प्रकाश में और ऐसे समाओ कि फिर उस प्रकाश का कभी अस्त न हो, जहाँ फिर से अंधेरा छा न पाए।





धारणा - 123

मायामुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 123

मन बुद्धि शक्ति आत्मा सब जानो, यह माया की उपाधी मानो।
तासे बुद्ध ने कहा अनत्ता, मुझ पर आत्मा की नहीं सत्ता।
पुनि तेही से पर हो जाओ, परमात्मा में स्थिर हो जाओ।
अहं भाव का कोई न स्थाना, उसको प्रबुद्ध अवस्था माना।

ध्यान विधि - 123

"मैं मन, बुद्धि, शक्ति या आत्मा हूँ" - ऐसी सारी धारणाओं को तोड़कर प्रबुद्धावस्था में प्रवेश कर लो।



आप एक परिशुद्ध और स्पष्ट समझ को स्वयं में विकसित करो कि सर्वजगत और मैं जो कुछ भी जहाँ कहीं भी खड़ा है सब माया के कारण है। इसमें से कुछ भी वास्तविक नहीं। ऐसा दृढ़ धारणा करते करते धीरे धीरे इससे बिलकुल पार हो जाओ। जब आप इससे पर हो जाएंगे तब आपके लिए माया की शक्ति क्षीण हो जाएगी।

प्रिय साधको!

आपने सुना होगा कि हर आदमी फरियाद कर रहा है कि माया परेशान कर रही है! माया का क्या करें! माया छूटती नहीं! आपने भी कभी तो किसी से यह कहा होगा, या सोचा होगा कि ये माया का बंधन कैसा है!

तो पहले तो यह समझिए कि माया क्या है? माया मुक्ति भाव फिर ध्यान में तुरंत ही समझ में आ जाएगा। दोस्तो, माया केवल भ्रांति है। माया का कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है। मजे की बात यह है कि जिसका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं है फिर भी वह सभी के साथ चालबाजी और जालसाजी कर रही है।

माया सभी को फंसाती है। सभी को ठगती है। माया के कारण सत्य असत्य लगता है और असत्य सत्य। इसलिए तो तुलसी कहता है कि यह माया ईश्वर की है। क्योंकि ईश्वर अदृश्य रहकर काम करता है। उसका काम करने का तरीका है, माया। और माया भी अदृश्य रहकर मनुष्य को फंसाती रहती है।

हमारे मनीषी कहते हैं कि ब्रह्मादि देव और असुर आदि सब उस माया के वश हैं। जिसके कारण सर्प में रस्सी का और रस्सी में सर्प का भ्रम होता है। माया एक मनोजाल मात्र है। परंतु वास्तविक नहीं होने के कारण मैं कहूँगी कि आप उससे मुक्त हैं। बंधन इसलिए लग रहा है कि आपके मन ने उसको मान लिया है, स्वीकार लिया है। इसलिए आप पराधीन हो गए हो।

दोस्तो, जगत के जीवों पर ईश्वर के बाद अगर किसी की सत्ता है तो वह है माया की। जो ब्रह्म को नहीं जानता, जो सत्य को नहीं जानता और जो परमात्मा को जानने में उत्सुक नहीं है, ऐसा मनुष्य माया में उलझता रहता है। माया जादूगर के इन्द्रजाल की भांति है। उसमें कुछ भी सत्य होता नहीं है। परंतु सबकुछ सत्य ही भासित होता है। यह माया की विशेषता है।

प्यारे साधको!

अच्छे अच्छे दार्शनिक जीव, जगत, माया और ब्रह्म इन चार विषयों में आदि काल से उलझते रहे हैं परंतु आज तक माया को कोई समझ नहीं पाया है।

मैं कहती हूं कि ईश्वरत्व को समझना आसान है परंतु माया को समझना कठिन। क्योंकि जो है ही नहीं उसे कैसे समझें। असत्य हमेशा कठिन होता है। सत्य सरल।

दोस्तो, जब तक मनुष्य के मन पर माया का पर्दा गिरा हुआ है तब तक वह सत्य को नहीं देख सकता। केवल सत्य की आंख से ही वह पर्दा अदृश्य हो सकता है। उस आवरण को हटाने केलिए सत्य बोध के सिवाय कोई भी उपाय नहीं है। और पर्दा हटते ही सारे आश्चर्य खत्म हो

जाते हैं। क्यों? क्योंकि स्टेज खाली दिखता है। हमने मान रखा था कि स्टेज पर बहुत सारे नाटक चल रहे हैं, बहुत सारे पात्र हैं, कोई रो रहा है, कोई हंस रहा है, कोई मर रहा है, कोई पैदा हो रहा है, कोई बीमार है तो कोई स्वस्थ। परंतु ये सब प्रोजेक्टर जैसा है।

प्रोजेक्टर के द्वारा थियेटर के पर्दे पर प्रकाश के आधार से छोटी सी चीज़ को बड़ी बनाकर दिखाते रहते हैं। और आप उन फल्मों के भावों में बहते बहते कभी हंसते हो कभी रोते हो और अनेक प्रकार से उत्तेजित होते रहते हो। ये सब क्यों होता है? प्रोजेक्टर की लीला के कारण पर्दा माया से भरपूर हो जाता है। ठीक ऐसे ही किसी अज्ञात में किसी अज्ञात ने एक महाप्रोजेक्टर रखा है ऐसा समझ लो। जो आपके मन की और मस्तिष्क के पर्दे पर इस दुनिया रूपी विभिन्न चित्रों को खड़ा करके आपको अनेक भावों में खींच जाता है।

थियेटर का नाटक या पिक्चर तो चंद घंटे का होता है परंतु जीवन नाटक थोड़ा लंबा चलता है। याद रहे, अगर पर्दा नहीं है, या माया की दीवार नहीं है तो प्रोजेक्टर कुछ नहीं कर सकता। उसे चित्र झेलने वाली एक खास जगह की आवश्यकता रहती है। और आप अपने मन में जालसाजियों से भरे चलचित्र को चलाने के लिए जगह दे देते हैं।

मन दीवार या माया रूपी आवरण खड़ा कर देता है। जैसे जैसे अज्ञान का अंधेरा गाढ़ होता जाता है वैसे वैसे चित्र साफ नज़र आते हैं। और फिर तो मन के पर्दे पर आजीवन एक लंबी फिल्म चलती रहती है। और वह फिल्म इतनी नोनसेन्स फिर भी रसप्रद है जैसे कि कोई गीत जोड़ता जाए और गाता जाए। जिसमें छंद, लय, ताल, सुर की कोई

संगति न हो वैसे हास्यास्पद चित्रों को भी आदमी रस से देखता रहता है, कितना मूढ़ है मनुष्य।

दोस्तो, उस अदृश्य महाप्रोजेक्टर में एक अन्तहीन रील चल रही है। जिसमें अपने आप दृश्य जुड़ते जाते हैं। उसमें बहुत सारी विसंगतियाँ भी हैं। बहुत सारे पात्र आते रहते हैं। कुछ लोग अपनी ओर से भी कुछ जोड़ लेते हैं। जैसे फिल्मों के पात्रों में आदमी अपनी मानसिकता के अनुसार खुद को उस पात्र में जीने लगता है ठीक ऐसे।

दोस्तो, दुनियाँ की इस फिल्म में मिलन, विरह, फायदा, नुकसान, जन्म, मृत्यु, हर्ष, शोक आदि चलता रहता है। कथा और पटकथा जुड़ती जाती है। रिश्ते बनते जाते हैं टूटते जाते हैं। फिर से बनते हैं और बिगड़ते हैं। आदमी टूटता है जुड़ता है। हंसता है रोता है। पलायन करता है, वापस भी आता है। और ऐसा करते करते एक दिन चलचित्र पूरा हो जाता है। उस दिन को दुनिया मनुष्य का मृत्युदिन कहती है।

दोस्तो, लेकिन करुणा की बात यह है कि जीवनभर जो कुछ भी देखने में पूरा जीवन खो दिया उनमें से कुछ भी वास्तविक नहीं था। सबकुछ उस अदृश्य मायावी की माया थी। परंतु उसका पता चले न चले उससे पहले तो जिंदगी आंखमिचोली खेलती हुई हाथ से निकल गई। आदमी चला गया। अचानक पता चला कि जिसे सत्य मान लिया गया था वह तो धोखा था, इन्द्रजाल था। और थोड़ी ही देर के बाद दूसरा शो शुरु हो जाता है। और बचे हुए लोग फिर से उस माया में मस्त हो जाते हैं।

प्यारे साधको!

कुछ लोग थियेटर की लाइटें चालू हो जाने के बाद मूढ जैसे कुर्सी पर बैठे रहते हैं क्योंकि वे भूल गए होते हैं कि यह सब तो नाटक था। ठीक ऐसे ही ज्यादातर लोग माया रूपी सिनेमा में जिंदगीभर मूढ की भांति बैठे रहते हैं।

प्यारे दोस्तो!

ये नाटक की फिल्सुफी कोई नई नहीं है। तत्व चिंतन के ग्रंथों के बाद शेक्सपीयर से लेकर आज तक सभी चिंतक रंगमंच का उदाहरण देते रहे हैं। परंतु मेरा हेतु यहाँ जीवन नाटक से नहीं है। मेरा आशय है, माया क्या है? और माया वश मनुष्य कैसे मूर्ख बनता है? यह समझाने का।

प्यारे साधको!

तो फिर ज्ञानी किसे कहेंगे? – जो मनुष्य पूरी पूरी सजगता से इस जीवन के चलचित्र चलाने वाले प्रोजेक्टर की माया समझ ले और उसमें खुद की भी छोटी मोटी भूमिका होने पर भी सारे भावों से पर रहकर साक्षी भाव से बरते यह है ज्ञानी।

दोस्तो, ज्ञानी माया की प्रबलता को जानकर उससे लड़ता नहीं है, उसके जाल में भी नहीं फंसता, उसका विरोध नहीं करता परंतु उसके वश भी नहीं होता। बस, अगर आप इतना कर पाए तो आप हो गए माया मुक्त।

प्यारे साधको!

आपने कभी सोचा है कि आपके जीवन रूपी चलचित्र में आपको आपकी भूमिका भले बड़ी लगती हो क्योंकि आपने अज्ञानवश अथवा मोहवश अथवा केन्द्र में रहने की प्रकृति के कारण ऐसा मान लिया है कि

दुनिया की सारी जिम्मेदारी आप पर ही है परंतु कभी सोचा है कि आपकी दुनियाँ कितनी और आप कौन? आपकी छोटी सी खोली या दो कमरे का मकान या ज्यादा से ज्यादा एक हवेली की दुनियां में भी एक छोटी सी कहानी में कितने पात्रों का प्रवेश होता है? कितनी घटनाएं एवं दुर्घटनाएं घटती हैं? आप कितने रंग और रूप बदलते हैं? कपड़ों की तरह रिश्ते बदलते हैं। मौसम की तरह मिजाज बदल लेते हैं।

कितना झूठ बोलते हैं! झूठ करते हैं! और सत्य की बातें करते हैं। पाप करते हैं और धर्म की बातें करते हैं। कभी रोने वाले, कभी रुलाने वाले, कभी आश्वासन देने वाले, कभी आश्वासन लेने वाले तो कभी आश्वासन छीनने वाले बन जाते हैं। कभी हंसने वाले, कभी हंसाने वाले, तो कभी खुद हास्यास्पद बन जाते हैं। कभी नाचते हैं तो कभी नचाते हैं। कभी स्वार्थी तो कभी परमार्थी बन जाते हैं। कभी मालिक तो कभी गुलाम। कभी जिंदा तो कभी मुर्दा। जीवन नाम की एक छोटी सी कहानी में आप कितने रंग ढंग बदलते हैं। और सब झूठ! फिर भी आप स्वयं को स्याने समझते हो!

अगर आप वास्तव में स्वस्थता से और शांति से बैठे हो और आपको पूछा जाए कि क्या आपने जिंदगी भर जो कुछ भी किया वह सोच समझकर किया है? सजगता के साथ किया है? जानबूझकर किया है? क्या आपका चलता तो आप किसी और ही तरीके से जीवन जीना चाहते या जीते?

प्यारे दोस्तो!

अगर आप प्रमाणिक होते तो आपका जवाब होता "ना" अगर पूछने वाला व्यक्ति प्रमाणिक और विश्वासपात्र व्यक्ति होता और आप

सभानता से सही उत्तर देते तो आप कहते कि मैं जो चाहता था ऐसा जीवन जीना तो बाकी ही रह गया। जैसे खेल में हार जाने के बाद हर खिलाड़ी सोचता है कि कुछ अलग ढंग से खेला होता तो जीत जाता। परंतु बाजी हाथ से निकल गई। अब तो हार चुके। नामोशी हो चुकी। अब तो कुछ नहीं हो सकता।

दोस्तो, अगर आप जाग्रति के साथ सत्य का स्वीकार करेंगे तो पता चलेगा कि जीवन तो इसी चलचित्र की तरह पूरा होने आया। उसमें कुछ भी वास्तविक नहीं था। हाँ, कुछ कुछ बातें अच्छी थीं, परंतु मैंने जैसा चाहा था ऐसा जीवन तो जीना ही चूक गया। मैं मेरी मर्जी से मेरे चुने हुए पात्रों के साथ तो जी नहीं पाया। मेरे हीरो हीरोइनों को लेकर तो ज़िन्दगी की फिल्म बन ही नहीं पाई। साईड हीरो भी पसंद के नहीं मिले। किसी अंजान डायरेक्टर ने मुझे पूछे बिना मेरी मर्जी के खिलाफ मेरी फिल्म उतार दी।

दोस्तो, वह फिल्म अच्छी थी या बुरी यह महत्वपूर्ण नहीं है। परंतु आपको सजग अवस्था में जैसा जीवन चाहिए था ऐसी बिलकुल नहीं थी। आप अंजाने में एक उबाऊ फिल्म में बरसों तक काम करते रहे। किसी अंजान प्रोजेक्टर के हाथ का खिलोना बनकर।

प्यारे साधको!

बस, यही है माया। जागे हुए महापुरुषों की वाणी से या संग से या ध्यान के द्वारा जब आप भी जाग जाते हो तब इन सब बातों का पता चलता है।

मनुष्य जीवन में सत्य को समझने के लिए देर न हो जाए इसलिए तो भारतीय परंपरा में बचपन से ही बच्चे की शिक्षा दीक्षा के

लिए गुरूकुल प्रथा थी और वहाँ ट्विंकल ट्विंकल लिटल स्टार की बातें केवल ओन पेपर नहीं थी। वहाँ तो आश्रम के पावन वातावरण में खुले आसमान के तले चांद सितारों का सहज साक्षात्कार हो जाता था। और साथ साथ वेद के सभी अंग और दार्शनिक पद्धति से शास्त्र ज्ञान के साथ साथ एक वास्तविक जीवन जीने का सही ढंग सीखने को मिल जाता था ऋषि मुनियों के सानिध्य में। ताकि जीव, जगत, माया और ब्रह्म इन चारों से बने जीवन नाटक को मनुष्य पहले से ही पूरी पूरी सजगता से देखता रहे और साक्षी भाव जगाकर उसके प्रभाव से मुक्त भी रह पाए।

दोस्तो, वह पावन माहौल आज के मनुष्य से छिन गया है। आदमी के पास धन और सुख संपत्ति के साधन आसानी से आने लगे। परंतु उनकी स्वार्थांधता के कारण सत्य की पगडंडियाँ अदृश्य होती गई। प्यारे भक्तो!

ध्यान फिर से एक बार आपको जगा सकता है अगर आप जागना चाहो तो। मेरे सारे ध्यान ग्रंथ आपकी थोड़ी मदद कर सकते हैं अगर आप सभानता से पढ़ना चाहो तो। मेरे वचन आपका हौसला बढ़ा सकते हैं अगर आप ध्यान से सुनना चाहो तो।

दोस्तो, अब आईए विधि की ओर। विधि का नाम है माया मुक्ति भाव। अब इतनी भूमिका के बाद यह विधि अथवा विधि का नाम शायद कठिन नहीं लगेंगे। विधि में प्रवेश कैसे करना है, इसे समझ लो।

मन, बुद्धि, शक्ति, आत्मा अथवा दृश्य अदृश्य जगत सबकुछ एक गुप्त प्रोजेक्टर का प्रभाव है इस बात को याद रखना। सबकुछ माया के कारण है। बुद्ध इस माया को बराबर समझ चुके थे। इसलिए उन्होंने आत्मा की सत्ता का भी अस्वीकार कर दिया और मूर्तिपूजा का भी। सत्ता

तो सत्ता है, फिर वह सत्ता पिता शुद्धोधन का सिंहासन हो या मनुष्य के मन का; परंतु सब माया है। बुद्ध ने तो आत्मसिंहासन का भी त्याग कर दिया और घोषणा कर दी कि मुझपर आत्मा की भी सत्ता नहीं क्योंकि कहीं "मैं" ही नहीं।

प्यारे साधको!

विज्ञान भैरव में शिव ने इस विधि को ११२वीं विधि के रूप में लिया है। यह तंत्र शास्त्र की अंतिम विधि है। अगर साधक जाग गया तो माया मुक्ति के बाद क्या बचेगा, कुछ नहीं। माया के कारण ही मन, बुद्ध, जगत, शक्ति, सुख-दुःख का आभास और अन्य सबकुछ है। माया से मुक्ति के बाद तो परम मुक्ति है। दोस्तो, माया के विषय में अब एक विशुद्ध समझ विकसित करके दृढ़ धारणा करो कि शून्य अथवा ब्रह्म जो भी कहो। उसे परमात्म कहो, ईश्वर कहो, शून्य कहो या कुछ भी न कहो; मेरे लिए सब बराबर है। क्योंकि मैं नहीं चाहती हूँ कि आप किसी शब्द को पकड़ लो। मैं इतना ही चाहती हूँ कि आप सत्य को समझ लो, मर्म को जान लो।

प्यारे साधको!

आप एक परिशुद्ध और स्पष्ट समझ को स्वयं में विकसित करो कि सर्वजगत और मैं जो कुछ भी जहाँ कहीं भी खड़ा है सब माया के कारण है। उसमें से कुछ भी वास्तविक नहीं। ऐसा दृढ़ धारणा करते करते धीरे धीरे उससे बिलकुल पार हो जाओ। जब आप उससे पर हो जाएंगे तब आपके लिए माया की शक्ति क्षीण हो जाएगी।

दोस्तो, फिर आप पर माया का कोई असर नहीं आ सकता। क्योंकि आपने समझ लिया कि माया का अस्तितत्व ही नहीं है तो असर

कहाँ से आएगा? मन, बुद्धि या अहंकार को स्थिर होने के लिए कोई कारण नहीं बचेगा। शुभ भी नहीं, अशुभ भी नहीं, सत्व भी नहीं तामस भी नहीं, पाप भी नहीं – पुण्य भी नहीं, जीव भी नहीं–जगत भी नहीं, मैं भी नहीं – तू भी नहीं। सिर्फ रहेगा तो प्रबुद्धावस्था में शाश्वत प्रवेश। और यही है माया से मुक्ति।



धारणा - 124

सर्वशिव भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 124

प्रति पदार्थ अनुभव सुख दुख में, सदा शिव प्रकाशे तेहि रुप में।
तेहि से मन पुनि पुनि शिव पांही, निकट दिव्यसन जावत नाही।।

ध्यान विधि - 124

प्रत्येक पदार्थ और अनुभव में शिव ही है ऐसा दृढ भाव करके दिव्यता में राचो ।



आपको दृढ़ संकल्प करना है इस विधि में कि प्रत्येक पदार्थ और सुख-दुःख के प्रत्येक अनुभवों में परमात्मा ही व्यक्त हो रहे हैं। जो कुछ भी हो रहा है वह ईश्वर की शक्ति से ही प्रकाशित हो रहा है।

ऐसा भाव करने से मनुष्य सुख अथवा दुःख के साथ अथवा किसी भी विषय वस्तु अथवा पदार्थ के साथ जुड़ने के स्थान पर धीरे धीरे और वारंवार एक ही भाव की तीव्रता के कारण शिवत्व के निकट आता जाएगा। फिर धीरे धीरे मन उस शिव भाव में स्थिर होता जाएगा।

प्रिय साधको!

ज्ञान में प्रवेश करने के दो ही मार्ग हैं – एक तो अपने दायित्व का खुद स्वीकार करो अथवा शरणागति। संसार की घटना तो घटती ही रहेंगी। हमारे पहले भीघटती थी और हम नहीं होंगे तब और घटेंगी। ये घटनाएं साधारण मनुष्य को विकृत कर देती हैं, दुःख कर देती हैं।

मैं साधारण मनुष्य उसे कहती हूँ कि जिसका अध्यात्म जगत में प्रवेश नहीं हुआ। जिसकी सही समझ विकसित नहीं हुई। और जो आहार, निद्रा, भय और मैथुन में ही जीता हुआ दुनियां में अपने ही स्वरालापना और खुद के रोने रोना ही सीखा है।

जो आदमी हर बात में समय और भाग्य अथवा ईश्वर का दोष निकालता रहता है और कुछ शब्द और बातें तो हमारे समाज में इतनी रूढ हो गई हैं कि समझदार आदमी भी आदतवश उन रूढ बातों को बक जाता है। वह भी कभी कभी साधारण आदमी की श्रेणी में गलती से आ जाता है।

दोस्तो, अब मूल बात की ओर आईए। ज्ञान के प्रवेश करने के दो मार्गो में से एक मार्ग है – जो कुछ भी घटे उसकी जिम्मेदारी स्वयं पर उठाना और दूसरा शरणागति।

शरणागति का मार्ग सरल है। परंतु वहाँ निरअहंकारिता की अवस्था अनिवार्या है। जब तक आप अहं शून्य न बनेंगे तब तक किसी की भी शरण में नहीं जा सकेंगे। अपनी हर जिम्मेदारी प्रभु पर नहीं डाल सकते। निरअहंकार के साथ निर्मलता भी इतनी ही जरूरी है। और ये बातें जिसके जन्मजात नहीं हैं तो कभी कभी इन दो गुणों तक पहुंचते पहुंचते ही आदमी की आयु खत्म हो जाती है।

दोस्तो, निरअहंकार और निर्मलता ये दो बातें सुनने में जितनी आसान हैं। इतनी ही वास्तविकता में आसान होते हुए भी आसान नहीं हैं। हाँ, जन्म से ही सरलता, सहजता, निर्मलता और समर्पण के गुण जिसके रक्त में होते हैं, वह तो बिना किसी के बताए ही भक्ति मार्ग पर चला जाता है।

दूसरा मार्ग है दायित्व का स्वीकार करना। जिसे आजकल लोग रेश्नालिस्ट कहते हैं। वे कहते हैं कि जो कुछ भी होता है इसके लिए मनुष्य ही जिम्मेदार है। ईश्वर को बीच में ही मत लाओ। लोग इसे एक प्रकार का नास्तिकवाद कहते हैं। परंतु मुझे यहाँ नहीं आस्तिकवाद की और न रेश्नालिजम की बात करनी है। मुझे बात करनी है सजगता की।

जो जागा हुआ है वही सही अर्थ में ज्ञानी है। बाकी बौद्धिक ज्ञान अथवा मिथ्या भावावेश दोनों निरर्थक हैं। ऐसे लोग संकट की घड़ी में बिखर जाते हैं। ज्ञान का विश्व अद्भुत, अदृश्य फिर भी सुंदर और सत्य है। जिसमें ध्यान के द्वारा प्रवेश किया जा सकता है।

दोस्तो, यहाँ धारणा कहती है कि ऐसा ध्यान करो कि सर्वशिव ही है। जो कुछ भी घटनाएं घटती हैं, जो कुछ भी अनुभव होते हैं, मन में जो कुछ भी भाव उठते हैं और विश्व में जो कुछ भी हो रहा है उसमें शिव ही है। यह एक तीसरा मार्ग है।

इस तीसरे मार्ग में शिव के ऊपर कुछ भी थोपने की बात नहीं है। परंतु अपने स्वरूप के बारे में अपनी समझ बढ़ाने की बात है। शिव संकल्प की बात है।

प्यारे भक्तो!

शिव का एक अर्थ है कल्याण और दूसरा कल्याणकारी। आप हृदय में तीव्र धारणा कीजिए परमात्मा कल्याणकारी है और वह अज्ञात जो कुछ भी करता है वह शिवरूप ही होता है अर्थात कल्याण के लिये ही करते हैं – ऐसी एक शुभ समझ के साथ अपने स्वीकार भाव को पूर्ण विकसित कर दीजिए। अपनी दृष्टि को विशुद्ध कर दीजिए, दुनिया को देखने का ढंग सूक्ष्म कर दीजिए। अपने कर्मों को शिव संकल्प के साथ कीजिए।

प्यारे साधको!

मनुष्य जैसी धारणा करता है ऐसा हो जाता है, वह जो सोचता है ऐसा हो जाता है। केवल सोचने से नहीं परंतु उस सोच के पीछे चित्त शक्ति पूर्ण रूप से सक्रिय भी होनी चाहिए।

मैं कहती हूँ कि आदमी गलत कामों के लिए सोचता है और उस मार्ग पर सक्रिय होता है तो उसमें भी सफलता प्राप्त करता है। हालांकि गलत काम ज्यादा जोखमों से भरा हुआ है और कठिन होता है। तो भी

सफलता मिलती है तो शुभ संकल्प सफल कैसे नहीं होगा? कौन रोकेगा आपको शिव कर्म से?

आदमी चाहे तो शैतान भी बन जाता है, तो शिवरूप बनना तो आसान है। क्योंकि यह तो मूल मार्ग है। सीधा और स्पष्ट रास्ता है। मूल स्रोत की खोज है। आपको केवल तीव्र भाव, दृढ़ संकल्प और निरंतर साधना से गुजरना है। लेकिन एक बात याद रहे! केवल अच्छी अच्छी बातों से कुछ नहीं होगा।

आज अध्यात्म कार्य करने में एक सबसे बड़ी बाधा खड़ी हो रही है। आज के आदमी ने इतनी अच्छी बातें करना सीख लिया है कि उनमें से सत्य क्या और कितना? - यह तय करना मुश्किल हो गया है। मनुष्य खुद भी अन्जान है अपने इस दंभपूर्ण रवैये से, खोखले व्यवहार से, बातूनता से।

खैर! जो हो रहा है उसके प्रति लक्ष्य देंगे तो हृदय विशेष करुणा से भर जाएगा। छोड़ो। अभी तो इतना ही सोचो कि आपको क्या करना है? ध्यान व्यक्तिगत और आंतरिक क्रांति का विषय है। सही सोच से सोच के साथ लग जाओ साधना में। हो सकता है कि आपके कल्याणकारी भाव की तरंगे किसी और को भी स्पर्श कर लें और वह अपने गलत रास्तों से सत्य की पगडंडी पर जा पाए।

प्यारे साधको!

अब ध्यान को समझ लीजिए। आपको दृढ़ संकल्प करना है इस विधि में कि प्रत्येक पदार्थ और सुख-दुःख के प्रत्येक अनुभवों में परमात्मा ही व्यक्त हो रहे हैं। जो कुछ भी हो रहा है वह ईश्वर की शक्ति से ही प्रकाशित हो रहा है।

ऐसा भाव करने से मनुष्य सुख अथवा दुःख के साथ अथवा किसी भी विषय वस्तु अथवा पदार्थ के साथ जुड़ने के स्थान पर धीरे धीरे और वारंवार एक ही भाव की तीव्रता के कारण शिवत्व के निकट आता जाएगा। फिर धीरे धीरे मन उस शिव भाव में स्थिर होता जाएगा।

शिव भाव के आलंबन के कारण आपका मन "मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ" ऐसी धारणाओं से धीरे धीरे मुक्त होता जाएगा और एक दिन अचानक शिवोहम् भाव का जन्म होगा।

मन जब धीरे धीरे सारे विषयों से संकल्प विकल्पों से पर हो जाएगा तब शिव का जो दिव्य भाव है उसमें स्थिर हो जाएगा।

आचार्य शंकर ने भारत के लाखों लोगों को यही धारणा दी। अद्वैतवाद का प्रचार का मूल रहस्य ही यह था कि उस वक्त सामान्य जन भी शिवोहं शिवोहं रटते रटते धीरे धीरे सर्व दुन्यवी पदार्थ शिवरूप हैं, जो कुछ अवस्थाएं हैं वह भी केवल आभासी हैं परंतु वास्तविक सत्ता तो शिव की ही है – इस सत्य को समझ लिया था।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, पंचमहाभूत, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, राग, द्वेष आदि दोष जन्म मृत्यु ... आदि सबकुछ शिवरूप है। माता, पिता, गुरू आदि बंधन उस शिव भाव को छू नहीं सकते क्योंकि अंत में ज्ञान भी शिव रूप है।

प्यारे साधको!

केवल शिवत्व की ही मौजूदगी है फिर वहाँ वेद और शास्त्र की भी क्या आवश्यकता है? समझ का यह प्रकाश विकसित होने से आपका पूर्ण प्रकाश में समावेश हो सकता है।



धारणा - 125

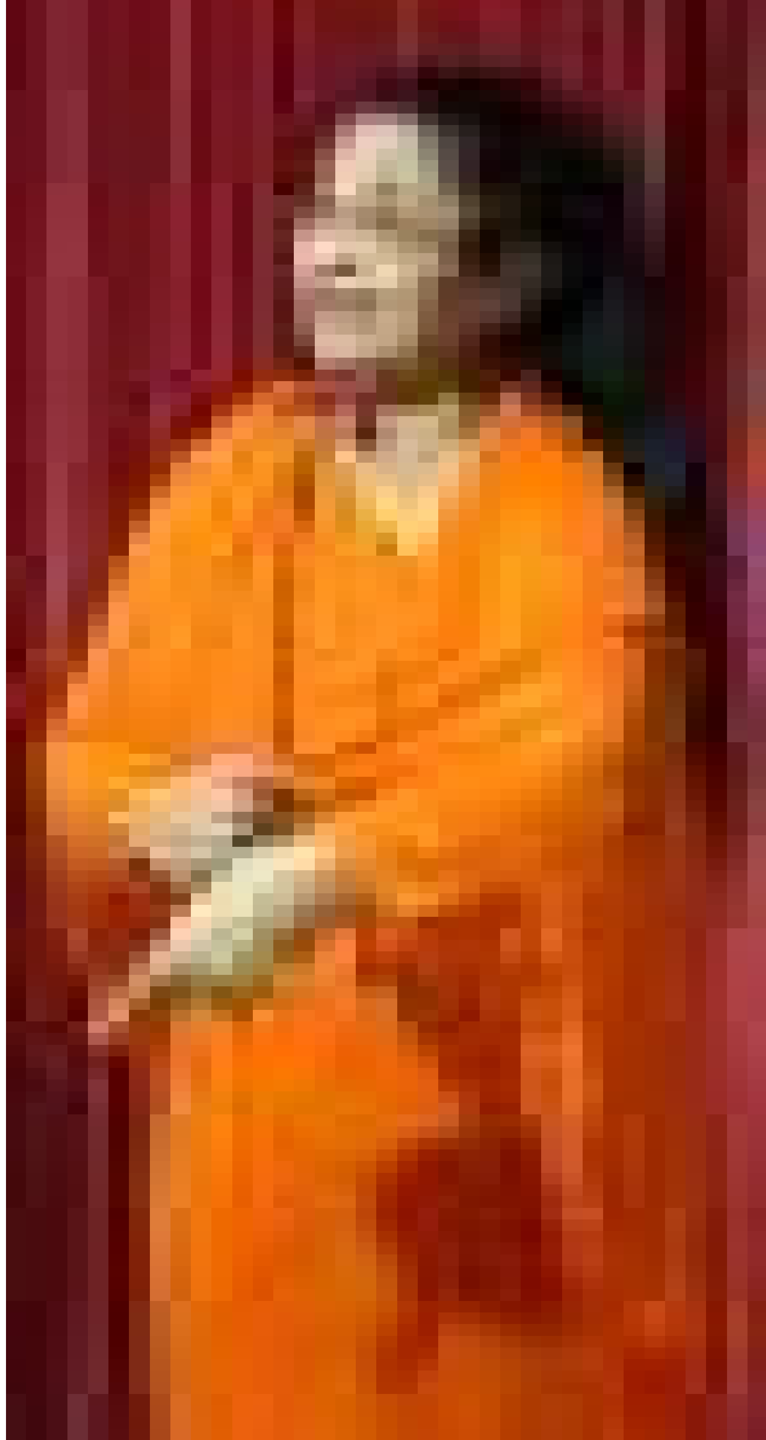
इन्द्रिय व्यापार चैतन्य शक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 125

ज्ञान विषय सम मानो इन्द्रिय, तेहि शक्ति में प्रगट अतेन्द्रिय।
अस समझी साधक परितृप्ता, शिव रूप जानि परम संतृप्ता।।

ध्यान विधि - 125

इन्द्रियाँ हमें ज्ञान कराती हैं और वह ज्ञान ही परमशक्ति है, ऐसा समझकर परितृप्त होकर शिवरूप में प्रवेश कर लो ।



दुनियां में दो प्रकार के आध्यात्मिक लोग हैं। एक इन्द्रियों को विक्षेप रूप मानकर उसकी शक्तियों को अंतर्मुख करने के लिए बड़ा यत्न करते हैं। और दूसरे प्रकार के लोग इन्द्रियों की शक्तियों को ईश्वर की शक्ति मानकर उससे अविरोध का भाव रखकर, उसे परमात्मा का स्वरूप समझकर, इस भाव में ध्यानस्थ होकर, इन्द्रिय सुख से परितृप्त होकर, वह शक्ति और तृप्ति चैतन्य का ही व्यापार है; ऐसी समझ के साथ संतृप्तावस्था तक पहुंच जाते हैं।

प्रिय साधको!

अगर आपको याद है तो मैं बार बार कहती हूँ कि इस ध्यान मार्ग की कुछ विधियाँ ऐसी हैं जो एक जैसी लगती हैं परंतु एक नहीं हैं। प्रत्येक विधि की एक अलग महिमा है, अलग धारणा है, अलग प्रभाव है। उसमें प्रवेश करने वाला एक अलग साधक वर्ग हो सकता है।

मैं कभी कभी कुछ लोगों को मेरी किताब पढ़ने के बाद कोमेन्ट देते हुए देखती हूँ। वे लोग बड़ी आसानी से कहते हैं कि ये दोनों विधियाँ एक ही हैं।

दोस्तो, जिसने ध्यान में कभी प्रवेश किया नहीं, जो चित्त को शांत करके एकांत में कभी बैठा नहीं, ना ही जिसके मन में कभी ध्यान की प्यास जगी; ऐसा आदमी कुछ पन्ने पलटकर शास्त्र के बारे में न्याय देने लगे यह हास्यास्पद लगता है। यह तो कुछ ऐसा हुआ कि कोई आदमी खेत में बोए हुए गन्ने के पत्ते देखकर मिठास का वर्णन करने लगे परंतु उसने न कभी गन्ने का रस पिया हो और न शक्कर कभी चखी तक हो।

ध्यान और योग के मार्ग में ऐसे खोखले आलोचक और खोखले उपदेशकों ने अड्डा जमा लिया है। यह परिपाटी तो आगे से चली आ रही है और असंख्य लोग गुमराह हो रहे हैं।

खैर, हम सूरज न बन सकें तो कोई बात नहीं। परंतु हमारे कमरे में छोटा सा दिया तो जला सकते हैं। यहाँ मुझे किसी शायर का एक शेर याद आ रहा है –

माना कि इस जहां को न गुलज़ार कर सके
कुछ ख़ार तो कम कर गए गुज़रे जहाँ से हम।

प्यारे दोस्तो,

बुद्ध हो या महावीर पूरी पृथ्वी को तो कोई भी गुलशन नहीं बना पाया। परंतु ज्ञानी पुरुष कोई प्रबुद्धात्मा अथवा जागा हुआ मनुष्य जहाँ कही से भी गुजरता है वहाँ के कुछ कांटे अवश्य कम हो जाते हैं। वे लोग कुछ लोगों को तो अवश्य ज्ञान में और ध्यान में ले जाते हैं। वे लोग कुछ लोगों को जगाते रहते हैं और अध्यात्म मार्ग इस तरह से किरणों से भरा रहता है।

मैं कहती हूँ कि आप पूरी धरती का अंधेरा दूर न कर पाओ तो कोई बात नहीं। सूर्य जैसा सूर्य भी एक साथ तो पूरी पृथ्वी पर उजाला बिछा नहीं सकता। इसलिए तो कुदरत ने दिन रात की व्यवस्था की। धरती के एक तरफ उजाला तो दूसरी ओर अंधेरा।

खैर, आप अपने हृदय में ज्ञान का छोटा सा दीपक तो जलाओ! अपने घर का अंधेरा तो दूर करो! तो भी बहुत हो गया। कई जागे हुए लोगों ने ऐसे ही स्वयं से प्रारंभ किया था।

दोस्तो, अब आइये विधि की ओर। विधि का नाम है इन्द्रिय व्यापार चैतन्य शक्ति भाव ध्यान। नाम थोड़ा लंबा लगता है।

प्यारे साधको!

बहुत कोशिश करने पर भी इस विधि के नाम को इतना छोटा कर पाई हूँ। धारणा को याद रखने के लिए यही रास्ता है, और कोई चारा ही नहीं। अगर आपको विधि अनुकूल आ रही है तो नाम भी याद रह जाएगा। जिसे हम प्रेम करते हैं उसकी कठिन बातें भी याद रह जाती हैं।

आप जो ध्यान को प्रेम करेंगे तो विधियों के नाम की ज्यादा चिंता नहीं करना। उसका तो सहज स्मरण हो जाएगा। परंतु याद रहे! प्रेम चाह और समय मांगता है। परंतु ध्यान समय के साथ साथ विधि के प्रति प्रेम लक्ष्य, निरंतरता, समग्रता और जाग्रति सबकुछ एकसाथ मांगता है। तो अब आइए ध्यान विधि की ओर।

दुनियां में दो प्रकार के आध्यात्मिक लोग हैं। एक – इन्द्रियों को विक्षेप रूप मानकर उसकी शक्तियों को अंतर्मुख करने के लिए बड़ा यत्न करते हैं। और दूसरे प्रकार के लोग – इन्द्रियों की शक्तियों को ईश्वर की शक्ति मानकर उससे अविरोध का भाव रखकर, उसे परमात्मा का स्वरूप समझकर, इस भाव में ध्यानस्थ होकर, इन्द्रिय सुख से परितृप्त होकर, वह शक्ति और तृप्ति चैतन्य का ही व्यापार है; ऐसी समझ के साथ संतृप्तावस्था तक पहुंच जाते हैं। – यह तंत्र मार्ग है।

तंत्र विधि में प्रत्येक विधि द्वारा जो क्रिया हो रही है वह ईश्वर की ही शक्ति है ऐसा भाव करना है। कुछ दिन पहले, मैं एक कव्वाली लिख रही थी। परंतु इस कव्वाली में जिस बात पर हम चर्चा कर रहे हैं यही

बात ईश्वर को एक अर्जी के रूप में पेश हुई है। इसी बात को आप इस ध्यान विधि में भी प्रयुक्त कर सकते हैं।

प्यारे भक्तो!

कभी कभी सैंकड़ो पन्नों का ग्रंथ जो असर नहीं ला सकता वह काम एक छोटी सी कविता कर देती है। भाव की तीव्रता को समजने और जानने के लिए मैं वह कव्वाली यहाँ आपके लिए पेश कर रही हूँ –

शे'र

ये अरज़ी आख़री इसको सनम चाहे गरज़ समझो।
अगर सच्चा है चारागर, तो मेरा ये मरज़ समझो।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मैं गाऊं गीत बन जा।
प्रीत की रीत बन जा।।१।।
चलूं तो रास्ता बन।
रुकूं तो मेरी मंज़िल।।२।।
सोऊं तो नींद बन जा।
जागूं तो होश मेरा।।३।।
पढूं तो बन किताबें।
सुपन देखूं तो तेरा।।४।।
खाऊं तब तू अमीरस।
भूख रोज़ा हो मेरा।।५।।
दिन में तू रौशनी।
रात में तू अंधेरा।।६।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

अमीरी में अमन बन।

ग़रीबी में फ़क़ीरी।।७।।
मिलन में तू हो मेहबूब।
विरह में दर्द मेरा।।८।।
मेरी हर बात में तू।
बन के सच ही निकल आ।।९।।
अगर आबाद में हूँ।
तो तू आबादी बनजा।।१०।।
हुआ बरबाद जो मैं।
तो वो मरज़ी हो तेरी।।११।।
रहूं मस्ती में मैं तो।
तू बन जा मौज मेरी।१२।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

अगर उदास हूँ तो।
मेरी खामोशी बन जा।।१३।।
मैं जो दुनियां बसाऊं।
मेरी दुनियां तू हो जा।।१४।।
मेरी दुनिया मिटा दूं।
तो तू दिलदार बन जा।।१५।।
अगर आँखें जो खोलूं।
तू ही दीदार बन जा।।१६।।
नज़र में कुछ भी आए।
नज़ारा बन निखर आ।।१७।।
उठाउं हाथ तो तू।
बंदगी मेरी हो जा।१८।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

जहाँ घूमूं फिरूं मैं।
वो ही हज जातरा हो।।१९।।
अगर गिर जाउं तो मैं।
मेरा सजदा कबूल हो।।२०।।
जो आँखें मूंद लूं तो।
तू मेरा ध्यान बन जा।।२१।।
कोई महेफ़िल में बोलूं।
तो मेरा ज्ञान बन जा।।२२।।
कदम कोई उठे तो।
मेरी रफ़्तार बन जा।।२३।।
कहीं भी मोड़ लूं तो।
वहाँ मंज़िल बनके आ।।२४।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

किसी को कुछ भी दूं तो।
तू ही सौगाद बन जा।।२५।।
जहाँ मैं ही मिट जाउं।
ऐसी कुछ बात बन जा।।२६।।
करूं जो बंदगी तो।
तू ही भगवान बन आ।।२७।।
शुरू जब हो इबादत।
सवाली, बनजा परवर।।२८।।
जहाँ बैठूं वहाँ तू।
सनम बन तूर पर्वत।।२९।।
या मेरा दिल बना दे।
मदीना मक्का दर पर।।३०।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मेरी रूह में बसा ले।
रब्बा काशी मथुरा।।३१।।
लबों से लब्ज़ निकले।
तेरे बिन हो ना दूजा।।३२।।
अगर सोचूं मैं कुछ भी।
तू मेरी सोच बन जा।।३३।।
ख़ून मैं लाली जैसा।
मेरी रग रग में घुल जा।।३४।।
दिल की तू ही है धड़कन।
मेरे कानों में कह जा।।३५।।
अगर ज़िंदा रहूं तो।
तू मेरी सांस बनजा।३६।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

सच्ची मेहबूबा जैसे।
खयाल हरदम हो तेरा।।३७।।
हवा जो सर्द आए।
बने पैगाम तेरा।।३८।।
पैर में घुंघरू बांधूं।
बजे झंकार तेरा।३९।।
मोर बनमें जो नाचे।
मुझमें फ़नकार बनजा।।४०।।
कहकशा धूम मचाए।
दिखे चमकार तेरा।।४१।।
पपीहा पी पी गाए।
सुनु मैं क़लाम तेरा।।४२।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

आसमां में परिंदा।
उड़े तो सलाम तेरा।।४३।।
झिलमिलाते सितारे।
भरा दरबार तेरा।।४४।।
कोई सागर जो देखूं।
प्यार भरपूर तेरा।।४५।।
देखूं जब मैं फलक पर।
छू लूं बुलंदी तेरी।।४६।।
कनारों में जो दरिया।
लगे पाबंदी तेरी।।४७।।
ये दुनिया जब भी देखूं।
सिर्फ हो नूर तेरा।।४८।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

नाचते झरने में मैं।
सुनु सब सुर तेरा।।४९।।
यहाँ खिलते फूलों में।
पाऊं मैं रंग तेरा।।५०।।
पतंगे के पंखों में।
सदा सतरंग तेरा।।५१।।
लिखूं कोई शायरी तो।
रदीफ और काफिया तू।।५२।।
शराबी हूँ मैं तेरी।
सनमजी साक़िया तू।।५३।।
मिले कोई मस्त मौला।
देखूं मैं रूप तेरा।।५४।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मेरी हर शाम सुबहां।
छांव और धूप तेरा।।५५।।
जो तकदीर साथ दे तो।
मानुं तेरी रहम है।।५६।।
जो तकदीर रूठ जाए।
तो भी तेरा करम है।।५७।।
अगर मैं कुछ भी चाहूं।
तू मेरी चाह बन जा।।५८।।
अगर टूट जाए दिल तो।
तू मेरी आह बन जा।।५९।।
मिले शोहरत जो मुझको।
तो मेरी शान बनजा।।६०।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

मिले दौलत जो मुझको।
वो तेरे काम की हो।।६१।।
अगर हिंदू बनूं मैं।
तू मेरा राम बन जा।।६२।।
बनू मुस्लिम तो मालिक।
तू ही रहमान बन जा।।६३।।
तू बन इसामसीहा।
बना दे जो ईसाई।।६४।।
अगर सरदार हूँ तो।
गुरू गोविंद बन जा।।६५।।
बनूं जो पारसी तो।
असो जरथोस्त बन जा।।६६।।

यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

धरम-करमों में मेरे।
बुद्ध महावीर बन जा।।६७।।
रहे ना कोई मक़सद।
कृष्ण बन के सिखा जा।।६८।।
किसीसे दोस्ती हो।
सनम तू यार बन जा।।६९।।
हो कभी दुश्मनी तो।
उसकी तलवार बन जा।।७०।।
मैं जो शागिर्द हूँ तो।
मेरा मुर्शिद बन जा।।७१।।
तमन्ना कोई जागे।
तू मेरी जुस्तजू बन।।७२।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

तुझमें मैं खो ही जाऊं।
एक ही आरजू बन।।७३।।
मेरे बस में नहीं कुछ।
तू मेरी जुस्तजू बन।।७४।।
"मोहिनी" ने ये अरजी।
करी सचमुच है न्यारी।।७५।।
अगर तुझको है प्यारी।
तो ज़रा ग़ौर करना।।७६।।
तू भी मिटना जो चाहे।
तो ही मुझको मिटाना।।७७।।
दिल में जीना जो चाहे।
तो ही मुझको जिलाना।।७८।।
यही अरज़ी है, अरज़ी है, अरज़ी है....

प्यारे साधको!

अगर इन्द्रियाँ आपके लिए बाधा हैं, वे विक्षेप खड़ा कर रही हैं, आपको भटका रही हैं और योग मार्ग की लंबी यात्रा करना आपके लिए संभव नहीं है। तो मैं कहती हूँ कि तंत्र मार्ग से चले जाओ और पहुंच जाओ आपके लक्ष्य तक।

मन को इन्द्रियों के पक्ष में सीधी धारणा दे दो। एक दूसरी बात याद रहे! ध्यान विधियों में जितनी धारणा दी हैं वे कोरी कल्पना नहीं हैं। असंख्य ध्यानियों का सत्यानुभव है। आपके मन को कह दो कि इन्द्रियाँ बाधक नहीं हैं, शत्रु नहीं हैं; वे तो जीवन के आनंद में, मनुष्य के अस्तित्व में और साधना की सफलता के लिए सहयोगी हैं।

दोस्तो, जरा सोचो तो सही। बिना इन्द्रिय तो आदमी, बहरा, अंधा, लूला, लंगड़ा, ठूंठा और नपुंसक हो जाएगा। आपका प्रत्येक कार्य में साथ देने वाली इन्द्रियों को आप शत्रु कैसे कह सकते हो। आखिर तो ईश्वर की शक्ति ही इन्द्रियों का संचालन कर रही है। तो वह भी एक अर्थ में ईश्वर रूप ही है।

दोस्तो, इन्द्रियों के प्रति ऐसा हकारात्मक अभिगम और उत्तम भाव से इन्द्रियों का व्यापार रहते हुए भी उसमें चैतन्य शक्ति ही कार्यान्वित है – ऐसा बोध जगाए रखते हुए दिव्यता में प्रवेश कर लो।





धारणा - 126

स्मृति मुक्ति भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 126

अनुभव गम्य स्मृति को छोडी, देहादि के बंधन तोडी।
तेही आधार ज्ञान को जानो, परम अनुभव को पहचानो।
बुद्ध इसे सम्यक स्मृति कहहिं, निज मति केवल आत्म स्मृति रहहिं।।

ध्यान विधि - 126

अनित की निरर्थक स्मृतियों से मुक्त होकर अनावश्यक मनोबंधनों से मुक्त होकर ज्ञान का अनुभव कर लो ।



मन मस्तिष्क की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। सत्ता तो शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा की ही है। उसके आदेश में आवश्यक स्मृतियों का संग्रह कर लो। जिसे बुद्ध सम्यक स्मृति कहते हैं। जो कल्याणकारी है। अन्य को विदा दे दो। आत्मज्ञान की शक्ति से निरर्थक स्मृतियों को डिलीट कर दो, ऐसा होने से केवल कल्याणकारी स्मृतियाँ और आत्मस्मृति रहेगी जो सुख शांति और आनंद की दाता है। तो अब करो अनुभव।

प्रिय साधको!

स्मृति ईश्वर का आशीर्वाद भी है और अभिषाप भी। मैं ऐसा क्यों कह रही हूँ? मुझे थोड़ा समझने का प्रयास करना।

अच्छी स्मृति शक्ति अच्छी बात है, ईश्वर की देन है। परंतु कुछ स्मृतियाँ ऐसी होती हैं कि जो मनुष्य भूल नहीं सकता और वे मनुष्य को पीड़ा देती हैं।

वास्तव में स्मृति में कोई ऐसी शक्ति नहीं है कि जो मनुष्य को पीड़ा दे सके। परंतु मनुष्य इतना कमज़ोर है कि सुख की स्मृतियों को च्विंगम की तरह मानसिक रूप से जुगाली करता रहता है और दुःख की स्मृतियों का भी स्मरण कर कर के बार बार दुःखी होता रहता है।

सुख की स्मृतियों को च्विंगम की तरह अमुक समय के बाद, रस और स्वादहीन हो जाने के बाद भी चूसते रहना यह ऊर्जा का क्षीण करना है, मूढता है, व्यर्थ प्रवृति है। और दुख की स्मृतियों से बार बार दुःखी होना भी अज्ञान है।

आप कहेंगे कि तो क्या करें? हमारे मन मस्तिष्क में तो इतनी इतनी बातें भरी है कि जो हमें चैन से जीने नहीं देती हम उन्हें न मिटा सकते हैं न भूल सकते हैं इसलिए हम दुःखी हो रहे हैं। दोस्तो, तंत्र के पास इसका रास्ता है। इसका उपाय है, ध्यान।

तंत्र आपको आत्मनिंदा करना, पलायन करना या भयभीत होना नहीं सिखाता। न आपको धर्मभीरू बनाता है। वह तो आपकी समझ बढ़ाता है, आपको दृष्टि देता है, आपको दंभमुक्त करता है, समझ बढ़ाने का इल्म बताता है। भूले भटके को मार्ग बताता है।

तंत्र साधना मार्ग में आपका आत्मविश्वास बढ़ाता है। जिस परिणाम के लिए आप बरसों से तरसते थे और खुद से परेशान था वह परिणाम तंत्र साधना पद्धति से शीघ्र ही पाया जा सकता है।

प्यारे साधको!

मेरे ध्यान ग्रंथों में आप जहाँ जहाँ तंत्र शब्द पाओ तो उसे केवल ध्यान विधियों के संदर्भ में ही समझना। ध्यान मनुष्य के मन को विशुद्ध कर देता है।

एक बार महावीर से किसीने पूछा कि आपने ध्यान से क्या पाया? महावीर ने कहा कि मैंने कुछ भी नहीं पाया परंतु कुछ खोया जरूर है। सामने वाले आदमी ने पूछा – क्या ध्यान में खोना होता है, आपने क्या खोया? महावीर ने जवाब दिया – मैंने ध्यान के द्वारा राग, द्वेष, काम, क्रोध आदि कमज़ोरियों को खो दिया है।

प्यारे भक्तो!

मन बदलता है तो शरीर के रसायण भी बदलने लगते हैं, रसायण बदते हैं तो आत्मा की प्रसन्नता बढ़ती है और सही स्वास्थ्य की अनुभूति

भी होने लगती है। स्वस्थता ही सही धर्म की प्रथम सीढ़ी है। बिमार धार्मिकता निरर्थक है, अप्रमाणिक धार्मिकता निरर्थक है; महावीर एक प्रमाणिक जवाब दे रहे हैं। वे ऐसा भी कह सकते थे कि ध्यान के द्वारा मैंने परमात्मा को पाया, आनंद को पाया। परंतु वे जानते थे कि दोषों को खोने से निर्दोषता अपनेआप आ जाएगी। पहले परमात्मा के लिए जगह खाली होनी चाहिए। ध्यान उस सच्चिदानंद के लिए आसन तैयार करता है।

दोस्तो, नासमझ लोगों के आध्यात्मिक प्रयास निरर्थक जाते हैं। दंभियों का ध्यान समय की बरबादी करता है और दंभ को बढ़ाता है परंतु प्रमाणिक ध्यान शरीर के रसायण बदलते हैं और रसायण बदलने के साथ ही कठिन बाते आसान लगने लगती हैं। फिर काम क्रोध को जीतना नहीं पड़ता। लोभमुक्त होने के लिए लड़ना नहीं पड़ता। वास्तविक ध्यान के उतरने से वे सब स्वतः खो जाते हैं।

आजकल मनोवैज्ञानिक मनुष्य के बिगड़े हुए मन के कारण जब कुछ मनोदेहिक बीमारियों का मनुष्य शिकार होता है तब कुछ ऐसे रसायण देते हैं जिसका संबंध मन और पेट से जुड़ा है। अध्यात्म शास्त्र कहता है कि मन की सूक्ष्म ग्रंथियाँ पेट में हैं। अब तो विज्ञान भी इस बात का स्वीकार करने लगा है। मन बिगड़ने से मस्तिष्क का संतुलन भी बिगड़ जाता है।

दोस्तो, पिट्युटरी ग्लेंड, पीनियल ग्लेंड, एड्रीनल ग्लेंड आदि का फंक्शन क्या है? और मनुष्य शरीर पर उसका असर कैसे पड़ता है? इस सबका अभ्यास आज भी विज्ञान की प्रयोगशालाओं में चल रहा है।

अंत:स्त्रावी ग्रंथियों में विक्षेप होने का कारण है मन की विक्षिप्तता। जो आपके शरीर, दिमाग और मन सबको बिगाड़ देती है। परिणाम

स्वरूप मनुष्य के स्वभाव में चिड़चिड़ापन, गुस्सा, डिप्रेशन, सप्रेशन और इन सबके प्रभाव में गुनाह, हत्या और आत्महत्या तक की नौबत आ जाती है। आदमी स्क्रीज़ोफैनिक बन जाता है। यह एक भयानक बीमारी है। ऐसी बिमारियाँ व्यक्तिगत रूप से और सामाजिक रूप से भी खतरनाक हैं।

मैं कहती हूं कि उस हद तक पहुँचने के पहले ध्यान का आधार ले लो। सामान्य रूप से मनोविज्ञान के किस्से में ऐसे मरीज़ों को मनोवैज्ञानिक उसे कुछ दवाओं के द्वारा बेहोश अथवा अर्धमूर्छित जैसे करके उसके अतीत को जानने की कोशिश करते हैं।

उसके मन की पीड़ा शिकायतें, प्रश्न, दबी हुई इच्छाएं, चोटें, सबके बारे में मरीज़ बोलने लगता है। और इस तरह से डॉक्टर जान सकते हैं कि उसके मन की गहराईयों में ऐसी कौन सी यादें और योजनाएं पड़ी हैं जिसकी स्मृति उसे परेशान कर रही है। फिर विविध थैरेपी देते हैं। जैसे कि आदमी को नींद में रखना, मस्तिष्क की क्रियाशक्ति को मंद कर देना, मन को बनावटी रूप से प्रसन्न रखना इत्यादि।

लेकिन दोस्तो, मैं कहती हूँ कि ये सब क्यों? आखिर क्यों? कभी सोचा है? यह सोचने के लिए मनुष्य को अब समय निकालना होगा। दुनियाँ में पागल लोगों की संख्या वैसे भी दिन ब दिन बढ़ रही है। सुख सुविधा बढ़ने के साथ स्वस्थता बढ़नी चाहिए परंतु विपरीत हो रहा है। सुखी देशों में पागलों की संख्या ज्यादा है। क्यों? इसके दो कारण हैं – एक तो विशेष सुख पाते रहने की लालसा और दूसरा श्रम का अभाव। आदमी के पास सोचने के लिए समय ही समय है। सारा काम तो मशीनों ने उठा लिया है।

अज्ञान और वासनाओं से भरा मन आखिर क्या क्या सोच सकता है, वह आप जानते हो? खाली बैठे आदमी का मन शैतानिक योजनाएं भी बनाने लगता है। जरूरी नहीं कि उसके मस्तिष्क में से अच्छी योजनाएं ही निकले। परंतु बेचारे को बोध नहीं है। बोध तब होता है जब वह पागलपन की हद तक पहुंच जाता है लेकिन कभी कभी तब तक तो देर हो चुकी होती है।

मनुष्य का मन और मस्तिष्क भी कैसा विचित्र है? पहले वे विनाश की योजना से बॉम्ब बनाता है और फिर राष्ट्रों के बीच में संधि प्रस्ताव, शांति प्रस्ताव रखता है। आदमी किसको धोखा दे रहा है। एक न एक दिन बॉम्ब अपना काम कर ही लेगा। क्योंकि नकारात्मक स्मृतियाँ विशेष रूप से जोर पकड़ लेती हैं। खैर छोड़ो।

हम बात कर रहे थे कि जिंदगी में घटी हुई घटनाएं कभी कभी भयानक अतीत बनकर मनुष्य की स्मृति में संग्रहित होती रहती हैं। भविष्य की योजनाएं भी। दो दिन के बाद भविष्य कल बनकर अतीत बन जाता है। और एक कड़वी दु:खदायक और पीड़ायुक्त स्मृति बनकर असफल योजनाएं मन में संग्रहित होती रहती हैं।

दोस्तो, स्मृतिकोष भले मस्तिष्क में हो परंतु उस डेटा को बार बार स्क्रीन पर लाने का बटन तो मन के पास है, कीबोर्ड मन के पास है और उन स्मृतियों के बुरे असर का शिकार मन ही बनता है फिर शरीर, फिर निकट के लोग और कभी कभी परिवार और समाज भी।

दोस्तो, लोग जिसे आतंकवाद कहते हैं; मैं उसे एक प्रकार का पागलपन कहती हूँ। वर्ल्ड ट्रेड सेन्टर और होटल ताज जैसे हाद्से एक भयानक पागलपन के बिना संभव नहीं परंतु वह एक योजनाबद्ध पागलपन

है। मनुष्य जब तक ध्यान में नहीं जाएगा तब तक कागज़ पर प्यार, मुहब्बत, दोस्ती और अमन की बातें करने का कोई अर्थ नहीं है। यह भी मूर्छा में हो रहा है और वह भी मूर्छा में हो रहा है। मूर्छा मनुष्य की शत्रु है।

प्यारे भक्तो!

अनावश्यक स्मृतियों का और कड़वी यादों का कभी कभी इतना बुरा परिणाम आता है कि हम सोच भी नहीं सकते कि ऐसा हो सकता है। दवाईयाँ अंतिम उपाय नहीं है। अगर कड़वी स्मृतियों का रोग बढ़ता गया तो आज के ब्लड प्रेशर और डायबिटीज़ की तरह आदमी को पागलपन भी रक्त में मिलने लगेगा और पौने से ज्यादा दुनिया को दवाईयों पर जीना पड़ेगा। इससे तो बेहतर है कि अभी से ध्यान में उतरो। निरर्थक स्मृतियों को खो जाने दो और शांति को उतरने का मौका दो।

प्यारे भक्तो!

मनुष्य के जीवन के दौरान लाखों छोटी मोटी घटनाएं घटती हैं। और काफी घटनाओं की याद मस्तिष्क में संग्रहित होती हैं। जिनमें से कुछ स्मृतियाँ जख्मों को बार बार कुरेदनेवाली होती हैं। और कुछ खुशियाँ गुदगुदी करती हैं। परंतु ये दोनों प्रक्रियाएं अज्ञान के कारण ही हैं। ये ध्यान के अभाव का परिणाम है।

दोस्तो, जीवन में आने वाले सभी अनुभव या हर घटनाएं कोई पूर्व संदेशा तो देती नहीं! कि जिससे आप सचेत रहो। वे तो आपको समझे बूझे उसके पहले तो घट जाती है। उनमें से कुछ अनुभव शरीर पर बीतते हैं तो कुछ मन पर। कुछ हृदय के साथ तो कुछ मस्तिष्क के साथ। कभी कभी तो आदमी का दिल कई घावों से छलनी छलनी हो जाता है। क्या करेंगे ऐसी स्थिति में?

प्यारे साधको!

तंत्र इसका इलाज बताता है। वह मनुष्य के कल्याण में कई धारणा विधि देता है। वे विधियाँ अद्‌भुत उत्तम और सरल हैं। मैंने देखा है कि तंत्र के बारे में कुछ भी नहीं जानने वाले लोग तंत्र नाम मात्र से भड़क उठते हैं। औरतंत्र शब्द से पूर्वग्रह से पीड़ित हैं। परंतु मैं चाहती हूँ कि तंत्र मार्ग की सात्विक विधियों का भरपूर उपयोग हो और मनुष्य आत्मबल से, ओज से, तेज से, सत्य से और ज्ञान से पूर्ण हो।

विधि कहती है कि शरीर आदि के बंधन को स्वीकारेंगे तब उससे संलग्न स्मृतियाँ भी आपको पीड़ित कर सकती हैं। तो फिर उस भाव को ही छोड़ दो कि मैं शरीर हूँ या शरीर मेरा है।

दोस्तो, आप तो केवल शरीर में बस रहे हो, वह तो मिट्टी की मढूली है, एक चमड़ी का तंबू है, वह न आप हैं न ही वह हमेशा हमेशा आपका है। तो फिर शरीर आदि के लिए जो अनुभव हो रहा है वह भी आपके नहीं। वह तो एक घटनामात्र थी। जो अतीत हो गया। आपका अतीत से क्या लेना देना? दुन्यवी अनुभवों को अपने अनुभव न समझते हुए दैनिक लीला समझो, एक बाहरी नाटक समझो। शरीर आदि का मूल आधार तो ईश्वर ही है। उसका अनुभव करते रहो जो ज्ञान स्वरूप है। उससे सही पहचान हो जाने दो। और एक ऐसी क्षमता प्राप्त करो कि स्मृतियाँ आपके वश हों, आप स्मृतियों के वश नहीं।

दोस्तो, जैसे कम्प्यूटर में डेटा डालने से स्टोर होता है, वह अपनी इच्छा से कुछ नहीं करता। वैसे ही मन मस्तिष्क की कोई वास्तविक सत्ता नहीं है। सत्ता तो शुद्ध ज्ञानरूप आत्मा की ही है। उसके आदेश में आवश्यक स्मृतियों का संग्रह कर लो। जिसे बुद्ध सम्यक स्मृति कहते हैं। जो

कल्याणकारी है। अन्य को विदा दे दो। आत्मज्ञान की शक्ति से निरर्थक स्मृतियों को डिलीट कर दो, ऐसा होने से केवल कल्याणकारी स्मृतियाँ और आत्मस्मृति रहेगी जो सुख शांति और आनंद की दाता है। तो अब करो अनुभव।



धारणा - 127

सावधान दर्शन भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 127

हेतु सह कोई विषय वस्तु में, सावधान रही निरखो तेहि में।
पुनि जागरुक रहि बाहर आओ, वस्तु दृश्य से पर हो जाओ।
फिर सोचो किसने यह जाना, यह ज्ञान से विश्रांत सयाना।

ध्यान विधि - 127

सहेतुक किसी विषय-वस्तु
में प्रवेश करके फिर
सभानता से उससे बाहर
आकर विषय वस्तु को
जानने वाले को पहेचानो,
वही विश्रांति का मार्ग है।

सजगता के अभाव में कई साधकों के लिए प्रारंभ में मुश्किलें खड़ी होती थी फिर गुर्जीएफ विधि को समझाकर कहते कि अब फिर से उसमें सजगता के साथ प्रवेश करना और अचानक उस विषय से बाहर आकर सावधानी से सोचना कि जानने वाला, देखने वाला कौन था? दृश्य कौन था? दर्शन क्या था? और भीतर से जवाब मिल जाएगा।

प्रिय साधको!

तंत्र विज्ञान में अनेक प्रकार की ध्यान विधियाँ हैं जिनमें से कुछ विधियाँ ज्ञानपूर्ण है, कुछ भक्तिपूर्ण, कुछ विशेष क्रियाकलापों से युक्त और कुछ निरालंब। परंतु याद रहे! प्रत्येक विधि में भले कुछ भी करने का विधान हो परंतु मूल में तो ध्यान है मन, वचन और कर्म से अक्रिया में प्रवेश। सब विधि धारणा तक सीमित हैं। ध्यान में प्रवेश हो जाने से साधक ध्येय को प्राप्त कर लेता है। फिर उसी अवस्था में ज्यादा से ज्यादा स्थिर रहने के संकल्प के सिवाय कुछ भी करने को बाकी नहीं रहता। और ध्यानावस्था जब सदा बनी रहती है वह हो गई समाधि। वहाँ सारे संकल्प विकल्पों से मुक्ति है।

अभी हम जिस विधि की ओर जा रहे हैं वह एक बहुत प्यारी विधि है। मनुष्य को संसार में होने के कारण अनेक प्रकार की भूमिकाएं निभानी पड़ती हैं। जो कार्य करना होता है उस कार्य में ऊर्जा भी देनी पड़ती है। और कार्य को अच्छी तरह से पूर्ण करने के लिए लक्ष्य भी। परंतु बाद में स्थित ऐसी होती है कि कार्य खत्म हो जाता है परंतु कार्य का असर

मन पर चिटका रहता है, उस संदर्भ की सोच चालू रहती है उसकी स्मृति में। मनुष्य जल्दी बाहर नहीं आ सकता है और कार्य पूर्ण होने के बाद के ये सारे विचार निरर्थक होते हैं। ऊर्जा को क्षीण करने वाले, समय को बरबाद करने वाले और चित्त में विक्षेप पैदा करने वाले होते हैं। परंतु आदमी उससे बाहर नहीं आ सकता। और ऐसे नए नए कार्य और नई नई स्मृतियों की श्रृंखला तो जीवन भर चलती ही रहती हैं। परिणाम स्वरूप मनुष्य कभी शांति का, स्थिरता का, एक चित्तता का अनुभव नहीं कर सकता। तंत्र ज्ञानियों ने सोचा कि मनुष्य की सुख, शांति के लिए उसे कोई विधि द्वारा ऐसा इल्म सिखा देना चाहिए कि किसी भी विषय वस्तु में वह प्रवेश करके अपनी इच्छा से तुरंत उस विषय से मानसिक रूप से बाहर आ जाए। दृश्य और घटना से त्वरित पर हो सके। अगर वो ऐसा हो गया तो समझो कि मनुष्य मुक्त हो गया, माया से छूट गया, स्वतंत्र हो गया।

और प्यारे साधको याद रहे!

मानसिक स्वतंत्रता ही सच्ची स्वतंत्रता है, भीतर से मुक्त होने का भाव ही सही मुक्ति है। बाकी गाड़ी, बंगले में दिखते और डिस्को थेप में नाचते हुए परम स्वछंद और स्वतंत्र दिखने वाले लोग तो दयनीय स्थिति में गुलाम होते हैं। वे बाहर से स्वतंत्र दिखते हैं – भीतर की भगवान जाने। वे भिन्न भिन्न चीजों के गुलाम हैं।

प्यारे साधको!

छोड़ो! मेरे कहने का मकसद आप समझ लो इतना ही काफी है।

यहाँ एक बहुत प्यारी विधि है वो आपको मुक्ति और स्वतंत्रता दोनों का शीघ्र अनुभव कराती है। और आप कितने सक्षम और शक्तिशाली

हैं यह खेल खेल में सिखा सकती है। परंतु प्रारंभ में जो प्रयोग खेल लगता है वह चोबीसों घंटे आपके जीवन में जब सम्यक जाग्रति बन जाए तभी विधि सार्थक होगी।

विधि कहती है कि इरादे के साथ किसी भी विषय और वस्तु में चेतना का प्रवेश कराओ, उस विषय वस्तु को सावधान होकर देखते रहो। फिर वह विषय अथवा वस्तु चाहे कोई भी हो उसकी फिक्र मत करो। ध्यान इतना ही रखना है कि सावधान रहो, सजग रहो वस्तु अथवा व्यक्ति कुछ भी हो उसका निरिक्षण करते रहो परंतु इन्वॉल्व नहीं होना है। बस यही क्षण कठिन है, यही क्षण कसौटी की है। फिर जागरुकता से उस विषय के बाहर आ जाओ और मन को आदेश दो कि तूने कुछ देखा ही नहीं, सुना ही नहीं, समझा ही नहीं; देखे को अनदेखा कर दो, क्षणभर में सुने को अनसुना कर दो, सोचे को अनसोचा कर दो, जाने हुए को अनजाना कर दो। फिर अंतर में देखो कि व्यक्ति को देखने वाला कौन था? ज्ञानने वाला कौन था? यह बिलकुल साक्षी होकर देखना है। न देखने वाले के साथ जाओ न दृश्य के साथ। न अतीत की ओर न भविष्य की ओर। सिर्फ ज्ञाता के रूप को जानने का प्रयास करो। प्रयास और प्रयोग अगर प्रमाणिक होगा तो जवाब मिल जाएगा। कि वास्तव में कुछ भी नहीं था, कुछ भी नहीं है, दृष्टा दृश्य और दर्शन तीनों केवल ज्ञान हैं इसके सिवाय कुछ भी नहीं।

प्यारे साधको!

यह विधि इतनी प्यारी है कि चलते फिरते अपना रोजाना काम करते करते इस प्रयोग से गुज़र पाएंगे। परंतु प्रारंभ में विधि के प्रति विशेष लक्ष्य देना।

मैंने सुना है कि गुर्जीएफ इस विधि को विविध रूप से कराते थे। कभी कभी एक साथ कई शिष्यों को दौड़ाते थे और अचानक आदेश देते थे कि जिस मुद्रा में हो उसी मुद्रा में रुक जाओ, मूर्ति की भांति खड़े रह जाओ। आज भी यह विधि छोटे बच्चो में स्टेच्यु खेल के रूप में प्रसिद्ध है। फर्क इतना ही कि वे बच्चे एक ध्यान विधि को अन्जाने में खेल रहे हैं। आपको जाग्रति के साथ करना है।

कभी कभी गुर्जीएफ एक कमरे में कुछ साधको को बंद कर देते थे। फिर आदेश देते थे कि एक दूसरों को देखो, देखते रहो, और फिर अचानक आदेश देते थे कि अब इस तरह बरतो कि एक दूसरे को पहचानते भी नहीं हो। यह एक शुद्ध ज्ञान विधि है।

सजगता के अभाव में कई साधकों के लिए प्रारंभ में मुश्किलें खड़ी होती थी फिर गुर्जीएफ विधि को समझाकर कहते कि अब फिर से उसमें सजगता के साथ प्रवेश करना और अचानक उस विषय से बाहर आकर सावधानी से सोचना कि जानने वाला, देखने वाला कौन था? दृश्य कौन था? दर्शन क्या था? और भीतर से जवाब मिल जाएगा।

प्यारे साधको!

अगर यह विधि आपको रास आ रही है तो बहुत प्यारी है। खेल खेल में ज्ञान को उपलब्ध हो जाओगे। अचानक परम विश्रांति का अनुभव करोगे। दोस्तो, जितना बताया जा सकता था, मैंने बता दिया। अब किसी विशेष मार्गदर्शन की प्रतीक्षा किए बिना स्वयं के निरीक्षक और परीक्षक बनकर सावधानी से किसी भी विषय वस्तु में प्रवेश करो, फिर अचानक बाहर आ जाना। उस क्षण में भी पूर्ण जाग्रति। क्योंकि माया तो क्षण के सौंवे भाग में भी पकड़ सकती है। इसलिए सजगता सबसे बड़ी शर्त है।

और तीसरे स्टेप में होश के साथ सोचना। यह कार्य बुद्धि से नहीं परंतु अंतरचेतना से होना चाहिए क्योंकि बुद्धि धोखा दे सकती है, झूठ बोल सकती है। अंत:करण धोखा नहीं देगा। उसका जवाब प्रमाणिक होगा। आप पास भी हो सकते हो फेल भी। आपके निरीक्षक आप ही हो, खुद से धोखा मत करना। अगर सही खोजी हो तो आरंभ करो।





धारणा - 128

शाश्वत शुद्ध भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 128

अल्प ज्ञानी कछु शास्त्र को कल्पा, शुद्धि हेतु अतिशय ते जल्पा।
तंत्र कहे बिन चित्त की शुद्धि, बाह्य शुद्धि साधन है अशुद्धि।
बिनु सत्ज्ञान दंभ सब होई, तासे ज्ञानि अशुद्धि कहे सोई।।

ध्यान विधि - 128

अंतर्शुद्धि के बिना बहिर्शुद्धि निरर्थक है, इस सत्य को जानकर निर्दंभ होकर ज्ञान में प्रवेश कर लो ।

तंत्र शास्त्री कहते हैं कि शुद्धाशुद्धि की सही समझ प्राप्त कर लो। ताकि तथाकथित धर्म कार्यों को न कर पाओ तो मन पीड़ा का अनुभव न करे। आपका मन अपराधभाव से न भर जाए। क्योंकि अपराध भाव भी एक पाप है। धर्म कभी आपको पाप करने के लिए प्रेरित नहीं करता। वह तो मनुष्य की विशुद्ध समझ बढ़ाता है। और इसलिए इस विधि का नाम दिया है - शाश्वत शुद्ध भाव ध्यान।

प्रिय साधको!

विश्व के धर्मों के साथ साथ मनुष्यता को आजीवन कुछ गलतफहमियाँ भी मिलती रही हैं, कुछ गलत परंपरा भी मिली, कुछ परंपरा बाद में खड़ी की गईं। जिनमें से कुछ कल्याणकारी और कुछ मूढतापूर्ण, निरर्थक, अतार्किक और अर्थहीन हैं।

इसका परिणाम यह आया कि जो लोग धर्म के सत्व तक पहुंचने के लिए सक्षम नहीं थे उन लोगों ने धर्म को नहीं परंतु धार्मिक परंपरा को पकड़ लिया। उस परंपरा के अनुसार कर्मकांड करने वालों को धार्मिक लोगों के रूप में स्वीकारा गया। स्थिति यह रही कि धर्म की सुवास दब गई और कागजी फूल की तरह बाहरी परंपरा ही धर्म का लिबास पहनकर हमारे सामने आती रही।

आप तो जानते हैं कि भीड़ में समझदार लोगों की संख्या बहुत कम होती है। भीड़ में या तो धोखे में आकर कुछ भोले भाले लोग आ जाते हैं अथवा कुछ लालची या स्वार्थी लोग अथवा कूट नीतियाँ खेलने वाले कुछ चालाक लोग। कुछ लोग ऐसे भी आते हैं कि जो भीरू हैं जिन्हें हम

समाज भीरू हैं। वे समाज से बहिष्कृत न हो जाने के डर से झूठी जयजयकार करने वाले होते हैं। और कुछ लोग ऐसे आते हैं जो भीड़ इकट्ठी करने के धंधे में जुड़े हैं। आज की सुसंस्कृत अंग्रेजी भाषा में इन्हें इवेन्ट मेनेजमेन्ट वाले कहते हैं जो धन के लिए भीड़ इकट्ठी करने की जिम्मेदारी ले लेते हैं। पता नहीं कहाँ कहाँ से पकड़ लाते होंगे लोगों को! खैर छोड़ो।

राजनीति तक ऐसा हो तो ठीक है, वहाँ मेरा बोलना जरूरी भी नहीं था क्योंकि आदि अनादि से राजनीति में यह चला आ रहा है। राम राज्य की व्याख्या आज लोग व्यंग्य में बोलते हैं। रामराज और पृथुनीति की अपेक्षा आज किससे करेंगे। छोड़ो परंतु जब धर्म के क्षेत्र में भी ऐसा शोर शराबा शुरु हो गया है तब वास्तव में तंत्र इस विध में जो कह रहा है उसे स्वर्ण अक्षरों से प्रत्येक धर्म स्थानों में लिख देना चाहिए।

धर्म की आत्मा में उतरने की जिस चित्त की क्षमता नहीं है, स्वयं को पहचानने की जिसकी क्षमता नहीं है, पाँच मिनिट भी ध्यान में बैठने की जिसकी क्षमता नहीं है ऐसे लोग पाँच घंटे नहाने धोने में, तिलक माला में और भगवान के भोग श्रृंगार में आसानी से लगा देते हैं।

कभी कभी तो अंदर से अति कुरूप आदमी जब भगवान का श्रृंगार कर रहा हो तब लगता है कि भगवान कितने उदार, दयालू और करुणामूर्ति हैं! कि सबकुछ चुपचाप सहन करते हैं। मुझे लगता है कि ऐसी क्षणों में भगवान स्वयं साक्षी भाव ध्यान में उतर जाते होंगे। ताकि उसकी मूर्ति के साथ कुछ भी हो उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता। खैर।

फिर धीरे धीरे तो हद हो गई। अल्पज्ञानियों ने कुछ शास्त्रों की कल्पना की और धर्म को पूरा कर्मकांड का रूप दे दिया और उसमें भी

बहिर्शुद्धि पर इतना ज़ोर दिया गया कि धीरे धीरे बाहरी शुद्धि के क्रिया कलाप ही धर्म का प्रमुख अंग और आधार बन गया।

मैंने ऐसे लोगों को देखा है जिनके रोम रोम में झूठ और पाखंड भरा है, जिसका चित्त एक पल भी शुद्धि में नहीं रह सकता परंतु ठंडी के मौसम में भी वे घर के बच्चों को अथवा बहुओं को ठंडे पानी से नहलाते हैं। छुआ–छूत पर इतना ज़ोर देते हैं कि जीना दुरूह हो जाए।

खुद तो धर्म के नाम पर पावन होने की लालच में धर्माचार्यों की झूठन खाते हैं। यही सिद्ध करता है कि वे लोग अपावन हैं। कुछ घरों में मैंने देखा है कि छोटे छोटे बच्चे भूख के मारे बिलखते हैं परंतु ठाकुरजी को भोग लगने के पहले अगर भूख प्यास से बिलखते बच्चे को कुछ भोजन दिया जाए तो वे लोग पूरा घर सर पे उठा लेते हैं।

ऐसे दिलों में दया, माया, ममता, प्यार, मानवीय आस्था आदि कुछ भी नहीं होता। परंतु चालाक बहुत होते हैं। उन्हें केवल आदत होती है शुद्धता का दिखावा करने की। और घर में छोटी सी अशुद्धि की घटना घटने पर इतना बकवास करते हैं कि घर में सुख शांति हो तो भी चली जाए।

ऐसे अज्ञानी लोगों का सुख केवल धर्मांधता में होता है। नहाने धोने में, तिलक पूजा में, वे कंठी माला तक का धर्म ही जानते हैं, वे मूर्ति का सिंगार भी इस तरह से करते हैं कि घर में कोई नया फर्नीचर टी.वी. या शॉकेस। ताकि कोई आए तो देखे जरूर। और आने वाले को पता भी चल जाता है कि घर में भगवान नहीं है परंतु भगवान का शॉकेस है।

विशेष करके भारत का बहुत बड़ा समाज इस बहिर्शुद्धि में अटका है। वे लोग इतने अंधे हैं कि उन्हें जीते जागते भगवान नहीं दिखाई

देते। वे इतने बहरे हैं कि उन्हें सत्य सुनाई नहीं देता। उन लोगों से मेरा कोई वैमनस्य नहीं है। परंतु जो गलत है वह गलत ही है। ऐसे लोग अपना और अपने इर्द गिर्द के लोगों के सही आध्यात्मिक विकास में बाधा रूप हैं।

दोस्तो केवल बहिर्शुद्धि पूर्ण धर्म नहीं है। ध्यान में उतरकर भीतर देखते देखते मनुष्य अपना ही निरीक्षक और परीक्षक बनकर जबतक आत्मरूपांतरण की प्रक्रिया से गुजरकर पूर्ण शुद्धि में प्रवेश नहीं करता तब तक बहिर्शुद्धि केवल दंभ है।

प्यारे भक्तों!

मैं यह नहीं कह रही हूँ कि स्नान मत करो। रसोई में शुद्धता मत रखो। तिलक न करो। भगवान का सिंगार न करो। नाम स्मरण मत करो। दोस्तो, मैं तो सौन्दर्य प्रेमी हूँ। जिस मनुष्य में एस्थेटिक सेन्स नहीं है, कला प्रेम नहीं है, वह अधूरा अध्यात्मिक है। मैं तो कहती हूँ कि आप भी सिंगार करो। और मूर्तियों को भी सजाओ। मेरे हिसाब से तो घर छोटा हो या बड़ा। परंतु घर की हर चीज सुंदर होनी चाहिए। साथ साथ मनुष्य के दिल का हर कौना भी साफ होना चाहिए। उसका मस्तिष्क, उसका आचरण, उसका व्यवहार, उसकी सोच, उसकी अभिव्यक्ति सबमें शुद्धता होनी चाहिए, सम्यकता होनी चाहिए।

दोस्तो, मनुष्य परमात्मा की चलती फिरती श्रेष्ठ मिसाल है। उसकी उपेक्षा करके, या उसको पीड़ा देकर दुनिया का कोई धर्म सही धर्म नहीं कहलाएगा। मैंने कहीं लिखा है कि

पल दो पल की पूजा क्या है

हर पल खुद को याद करो

मूर्ति तो बोले न बोले
तुम तो जिंदा ईश्वर हो
मंदिर में जाने वालों
तुम खुद भी तो एक मंदिर हो।

प्यारे साधको!

केवल बहिर्शुद्धि पर जोर देना और भीतर घोर अंधेरा। यह तो धर्म का अपमान है। एक अर्थ में अधार्मिकता है। मैं उसे अ–अध्यात्म कहूँगी।

भारत के तांत्रिक मनीषियों ने कहा कि आंतरिक शुद्धि के बिना केवल बाह्य शुद्धि के साधन तो एक प्रकार की अशुद्धि है जिसे हम दंभ अथवा मानसिक अशुद्धि कह सकते हैं। दोस्तो, स्वयं शिव को ऐसा निवेदन करना पड़ा क्यों? क्योंकि उन्हें जरूरी लगा।

सत्यज्ञान की उपलब्धि के बिना आप बाहरी शुद्धि में कितने भी व्यस्त रहो परंतु वह तो दिखावा है, पाखंड है, खुद को और दूसरों को ठगने की बात है, आडंबर है। इसलिए शिव दंभ को, अडंबर को, दिखावे को अशुद्धि कहते हैं।

प्यारे साधको!

आज के कई धर्मों में ढोंग रूपी अशुद्धि का बोलबाला है। शायद लाखों वर्ष पहले शिव को इस बात का पता चल गया हो कि धर्म के नाम पर मनुष्य क्या करने वाला है? इसलिए बहुत पहले से ही चेताया। दंभ के कारण शुद्धि का प्रदर्शन करने वाले अथवा अंधश्रद्धा और मूर्खता के कारण केवल बाह्य शुद्धि में ही अटके रहने वाले दोनों धार्मिक और आध्यात्मिक क्षेत्र के लिए घातक हैं।

शुद्धि जरूरी है अनिवार्य है परंतु उसे वैज्ञानिक ढंग से समझो। स्वास्थ्य के साथ जोड़ो, वातावरण की शुद्धता के साथ जोड़ो, पर्सनल हाईजान के साथ जोड़ो, शरीर धर्म के साथ जोड़ो, संस्कार के साथ जोड़ो, सुंदर और स्वच्छ दिखने के लिए जोड़ो, तब सही है; परंतु धर्म के साथ उसका क्या लेना देना? कोई भला आदमी किसी कारण से दो दिन नहीं नहा पाया और बिना नहाए ही मंदिर चला गया तो क्या कोई पाप हो गया? नहाने न नहाने को पाप और पुण्य के साथ जोड़ना ये कैसी मूढ़ता है।

किसी आदमी ने बिना नहाए भोजन कर लिया तो कोई पाप हो गया! बिलकुल नहीं, मैं तो कहूंगी कि आपके शरीर को स्नान से ज्यादा भोजन की आवश्यकता है तो उसे पहले भोजन देना यही सही धर्म है। परंतु सही लोगों को सीधे सादे और भोले-भाले लोगों को अपराध भाव में ले जाने की यह एक साजिश है। ऐसी धार्मिक जालसाजिओं से जल्दी बाहर निकल आओ।

दोस्तो, धर्म का संबंध तो सीधा मनुष्य का जीवन, उसकी चेतना, उसका हृदय, उसकी आत्मा और भावजगत से है। और अध्यात्म का संबंध आंतरिक रूपांतरण से है। दिन में तीन बार स्नान करके बाहर के कपड़े भले बदलते रहो परंतु आंतरिक आवरण न हटा तो आपका स्नान दो कौड़ी का भी नहीं। वैसे तो बतख, बगुले, मछलियाँ, कछुआ, मगरमच्छ और सर्प आदि दिनरात नहाते हैं; इससे क्या?

मेरी दृष्टि से तो पशुता में से मनुष्यत्व में प्रवेश हो जाने का नाम ही है धर्म। दानवता से देवत्व में प्रवेश का नाम है धर्म। अंधेरों में से प्रकाश में आने का नाम है धर्म। अहं और अज्ञान से मुक्त होकर सत्य का

साहस है धर्म। जीवन क्यों और कैसे जीना चाहिए? इस विषय की सच्ची समझ है धर्म - अब आप ही सोचो क्या केवल नाहने-धोने से ऐसी समझ विकसित हो जाएगी?

नहाने से शरीर शुद्धि होती है, पाचन सुधरता है, रक्तचाप संतुलित होता है, मन प्रसन्न रहता है, चमड़ी साफसुथरी दिखती है, पसीने की बदबू धुल जाती है, चमड़ी के रोग नहीं होते और आप सुंदर दिखते हैं; ये सब तो बराबर है परंतु एक दूसरी बात भी याद रहे कि ऐसा सब हो इसलिए ऐसी सुविधाएं तो भारत के आम आदमी से विदेशों के कुत्ते को ज्यादा मिलती है। तो क्या कुत्ते धार्मिक हो जाएंगे? ज्ञानी हो जाएंगे? प्रबुद्ध हो जाएंगे? कुत्ता कुत्ता मिट जाएगा? जरा सोचो! मैं बहिर्शुद्धि के विपक्ष में नहीं हूँ परंतु दंभ के विरोध में हूँ और आंतरिक शुद्धि के सीधे पक्ष में हूँ।

तंत्र कहता है कि चित्त की शुद्धि के बिना बाह्य शुद्धि के सारे साधन अशुद्धि है। क्योंकि जब तक मनुष्य अंदर से बदलता नहीं तब तक केवल धर्म के बाहरी अंगों में राचना, यह दंभ अथवा अज्ञान है। और मेरी दृष्टि से अज्ञान सबसे बड़ी अशुद्धि है।

प्यारे साधको!

अब आप समझ गए होंगे कि विधि क्या कहना चहती है? और आपको क्या करना है? दो बात का खयाल रखें – आपका मुख्य उद्देश्य है अंतरशुद्धि, आंतरिक रूपांतरण, प्रकाश में प्रवेश उसे मत चूकना। दूसरी बात केवल बाहर की शुद्धि में मत उलझे रहना। अगर ध्यान में बैठना है, समय का अभाव है, जल की पूरी सुविधा नहीं है, तब स्नान और ध्यान दोनों में से एक को चुनना है ऐसी स्थिति में मैं कहूंगी कि स्नान की चिंता छोड़ा। ध्यान को समय दे दो। स्नान तो कभी भी हो जाएगा।

परंतु ध्यान एक अवसर है उसे मत गंवाना। उतर जाओ ध्यान में। ध्यान भीतर की अशुद्धियों को धो डालेगा। जब भी ध्यान का माहौल बने, उसमें रस बढ़ने लगे या जब भी जी चाहे तब बाहरी शुद्धि का विचार किये बिना बैठ जाओ ध्यान में।

याद रहे, ध्यान कोई स्थूल क्रिया नहीं है कि जैसे रोज ऑफिस गए, सब्जी मंडी गए, वापस आए, वैसे भाग दौड़ में हो सके। ध्यान तो समग्रता चाहता है।

तंत्र शास्त्री कहते हैं कि शुद्धाशुद्धि की सही समझ प्राप्त कर लो। ताकि तथाकथित धर्म कार्यों को न कर पाओ तो मन पीड़ा का अनुभव न करे। आपका मन अपराधभाव से न भर जाए। क्योंकि अपराध भाव भी एक पाप है। धर्म कभी आपको पाप करने के लिए प्रेरित नहीं करता। वह तो मनुष्य की विशुद्ध समझ बढ़ाता है। और इसलिए इस विधि का नाम दिया है – शाश्वत शुद्ध भाव ध्यान।

मैंने ऐसे मस्त बाबाओं को देखा है कि जो लगभग नहाते ही नहीं। वह उनका मार्ग है। मैं आपको यह नहीं कहती हूँ कि मत नहाओ परंतु इतना ही कहती हूँ कि नहाना चूक जाओ तो कोई पाप नहीं कर रहे हो। बात को छिपाने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि वह तो दंभ हो गया।

दोस्तो, थोड़े साहसी बनो, धर्म भीरू मत बनो, सत्य में जिओ, नहाना भले चूको परंतु ध्यान नहीं चूकना क्योंकि ध्यान आपको सारे पापों से ऊपर उठा देगा।



धारणा - 129

समभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 129

निंदा स्तुति सुख दुख समभावा, शत्रु मित्र समान यह गावा।
क्योंकि सब में ब्रह्म बिराजे, अस जानि ते ब्रह्म सम राजे।।

ध्यान विधि - 129

प्रत्येक द्वंद्वपूर्ण स्थिति में समभाव रखकर ब्रह्मरूप बन जाओ ।

विधि कहती है कि समभाव ध्यान में साधक को धारणा करनी है कि मेरी निंदा हो या स्तुति, कोई प्रेम से देखे या नफरत से, मुझे सुख मिले या दुःख, मेरा शत्रु हो या मित्र परंतु मुझे मेरे "मैं" से संपूर्ण बाहर निकल जान है। मुक्त हो जान है। फिर निंदा स्तुति भले होती रहे परंतु वह मेरी नहीं हो पाएगी, वह मेरा स्पर्श नहीं करेगी।

प्रिय साधको!

इस ध्यान विधि का मैंने नाम दिया है – समभाव ध्यान। क्या है समभाव का अर्थ? हर हाल में हर व्यक्ति, वस्तु और परिस्थिति के प्रति समान भाव रखना। इस विधि में साधक की कसौटी हो जाती है। क्योंकि आप मित्र के प्रति तो सद्भाव रख सकते हों परंतु शत्रु के प्रति रखना कठिन है। अपना हित करने के लिए समभाव रख सकते हो परंतु अहित करने वाले के लिए नहीं।

दोस्तो!

हितकर्ता और अहितकर्ता, शत्रु और मित्र, सुख और दुःख सबमें समभाव रखना ये संपूर्ण आध्यात्मिक संतुलन के बिना संभव नहीं है। आध्यात्मिक संतुलन का अर्थ है आंतरिक संतुलन। ध्यान में उतरते उतरते एक ऐसी अवस्था आ जाती है कि फिर हर प्रकार का भेद मिट जाता है। वैसे तो रामायण और गीता में समभाव का भक्त और ज्ञानी दोनों के लक्षणों में समावेश किया है। अरण्यकांड में श्रीराम भक्त नारद से कहते हैं कि ज्ञानी भक्त कैसा होता है ?

सम सीतल नहीं त्याग ही नीति

सरल सुभाव सबहीं सन प्रीति

संत के गुण कैसे होते हैं। नारद के द्वारा ऐसा प्रश्न पूछे जाने पर राम उत्तम भाषा में नारद को संतों के गुणों को समझाते हैं। परंतु यहाँ तो हमें केवल समभाव ध्यान की ही बात करनी है। साधक को एक ऐसी धारणा अर्थात तीव्र भाव से लगातार गुजरना है। कि मेरे लिए कोई भेद नहीं है। सब समान हैं। जैसे गीता में कृष्ण कहते हैं कि शूद्र हो या ब्राह्मण, श्वान हो चांडाल, हे अर्जुन जो सबमें समान रूप का दर्शन करता है, वह मुझे प्राप्त कर सकता है।

यहाँ कृष्ण को किसी व्यक्ति के रूपमें मत समझना। यहाँ कृष्ण आनंद, शांति और सभानता का प्रतीक हैं।

दोस्तो, बाहर से देखेंगे तो एक चांडाल है, दूसरा ब्राह्मण है, तीसरा कुत्ता है; आपको लगेगा कि यह कैसा दर्शन? दोस्तो यहाँ तर्क की बात नहीं चल सकती। रंग, रूप, संस्कार, आकार, जाति सब अलग अलग होने पर भी कैसे समान रूप से देखें? पर हाँ, ऋषियों ने तर्क को भी ऋषि कहा है। अगर आप सम्यक तर्क करना जाने तो सम्यक समाधान प्राप्त हो जाता है। कृष्ण यह कहना चाहते हैं कि उन पात्रों में या पशुओं में ज्ञानी पुरुष को बाहरी स्वरूप को नहीं देखना है। रंग, रूप, नाम और गुण से ऊपर उठकर उनमें छिपि हुई जो सूक्ष्म चेतना है उसे देखो। कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! चेतना के स्तर पर सब समान हैं।

प्यारे साधको!

परंतु चैतन्य रूप सूक्ष्म है, इन्द्रियातीत है। और स्थूल रूप इन्द्रिय गम्य है। इन्द्रियों के पार की चीजों को जानने के लिए आपको भी इन्द्रियों

के पार जान पड़ेगा। दोस्तो, ध्यान है इन्द्रियों के पार जाने की कला। आप जैसे जैसे ध्यान में उतरते जाएंगे, वैसे वैसे यह क्षमता बढ़ती जाएगी। दृष्टि विकसित होती जाएगी। समज खिलती जाएगी। यह बात इतनी सूक्ष्म है कि दृष्टांतों से या शास्त्रों के अवतरणों से समझ में नहीं आ सकती। इसके लिए अनुभवों से गुजरना पड़ेगा और वह अनुभव सूक्ष्म जगत का है।

प्यारे साधको!

आपको समभाव ध्यान में उतरना पड़ेगा और प्रारंभ में कठिन लगती विधि के साथ स्थिर होना पड़ेगा। क्योंकि मनुष्य का मन अति चंचल है। और उसे बचपन से ही द्वंद्व में द्वैत में और भेदभाव में जीने की आदत डाल दी गई है।

माँ के गर्भ से बाहर आते ही वह दूसरा हो जाता है। दो हो जाता है। वहाँ से द्वैत की यात्रा शुरु होती है। बच्चा जब तक माँ के गर्भ में था तब तक दो होने पर भी एक ही थे। परंतु जन्म के बाद बच्चा और माँ दो हो गए। माँ तो पहले से ही मान चुकी होती है कि हम दो हैं। बच्चा गर्भ में होते हुए भी माँ की धारणा तो बिलकुल लौकिक और स्पष्ट है कि मेरा बच्चा मेरे पेट में पल रहा है।

मज़े की बात तो देखो! एक ही चेतना दोनों में बह रही है, एक ही रक्त दोनों की रगों में बह रहा है, एक ही हृदय के बल से दोनों का दिल धड़क रहा है फिर भी माँ के मन की दो की धारणा पृथ्वी पर आने से पहले मिल जाती है। कुछ समय के बाद बच्चा शारीरिक रूप से माता से अलग होकर पृथ्वी पर आता है। तब से उसका एक नया संसार शुरु हो जाता है – नए भाई बहन, माँ बाप, नए रिश्ते, नया माहोल, फिर स्कूल कालेज,

नए मित्र, शिक्षक, शिक्षा और सबके साथ वह एक व्यवहारिक भेद से जीना सीख लेता है। लौकिक स्तर पर वह जरूरी भी है। घर में माता, बहन, पत्नी, और बेटी चार नारियाँ हो तो भी चारों के साथ लौकिक भाव अलग अलग ही रहेगा। परंतु यह सांसारिक बात हैं।

अध्यात्म की ऊंचाई पर लौकिक रिश्ते गिर जाते हैं और सबमें दिव्य और समान चेतना का ही दर्शन होता है। एक अर्थ में यह वितराग की पराकाष्ठा है। दोस्तो, ध्यान से ऐसी घटना सहज ही में घट जाती है। ध्यान बिना किसी दीक्षा से आपको सन्यास की अवस्था में पहुंचा सकता है। घर छोड़े बिना घर में ही अरण्य की शांति दे सकता है, यही ध्यान की महिमा और निश्पत्ति है।

समभाव ध्यान की पूर्णता के बाद बुद्ध जब घर पर भिक्षा लेने के लिए आते हैं तो उन्हें पिता में पिता या पत्नी में पत्नी नहीं दिखाई देते, क्यों? क्योंकि पहले तो गौतम को गौतम में गौतम का दिखाई देना बंद हुआ। जब आप खुदी को भूल जाएंगे तब आपको हर जगह खुदा का ही दर्शन होगा। सूफियों का यह वचन समभाव ध्यान से सार्थक हो जाता है।

दोस्तो! आप जब तक अपनी दुनियादारी की मानसिकता से ऊपर नहीं उठ पाएंगे। स्वयं को नहीं बदल पाएंगे तो दुनियाँ को बदली हुई देखना असंभव हो जाएगा। आप खुद नहीं बदले तो दुनियाँ के प्रति समभाव जागना संभव नहीं है।

पहले तो इस विधि के द्वारा आपको संपूर्ण अतीत से रिक्त हो जान पड़ेगा। संपूर्ण रूप से खाली हो जान पड़ेगा। एक अर्थ में स्वयं को केवल चैतन्य रूप में देखने की कला हांसिल करनी होगी।

एक बार एक शिष्य गुरू के पास दीक्षा लेने आते हैं। गुरू पूछते हैं कि तेरे भीतर क्या है? शिष्य कहता है कुछ भी नहीं। गुरू ने एक ही प्रश्न तीन बार पूछा। शिष्य ने तीनों बार एक ही जवाब दिया। तब गुरू ने कहा कि बेटा अब तुझे दीक्षा की कोई जरूरत नहीं है। तू स्वयं सिद्ध बन गया। जिसके भीतर कुछ नहीं है उसके लिए बाहर भी कुछ नहीं है। जिसके लिए भीतर भेद नहीं वह बाहर भी भेद नहीं करेगा।

भीतर का भेद जब मिटेगा, जब भीतर कुछ भी न बचेगा तब घटना घट सकती है। भीतर अगर एक भी बच रहा है। तो वह एक दूसरे की संभावना खड़ी करता है, दूसरा तीसरे की, तीसरा चौथे की और इस तरह संसार आगे बढ़ता है। भीतर अगर राग है तो वह राग द्वेष को खड़ा करने का काम कर सकता है। भीतर अगर कुछ भी पड़ा है तो उन बीजों में से पूरा संसार वृक्ष उग सकता है।

दोस्तों! शिष्य ने जैसे ही कहा कि भीतर कुछ भी नहीं है। तुरंत गुरू ने उसे गुरू बन जाने का आदेश दिया और कहा कि अब मेरे पास ठहरने की जरूरत नहीं है। जाओ और दूसरों को जगाओ।

प्यारे साधको!

भीतर का भेद मिटा तो बाहर का भेद अपनेआप मिट जाएगा। दोस्तो, रामायण और गीता जैसे शास्त्र तो केवल रास्ता बताते हैं। कुछ शब्द देते हैं। कुछ हिंट देते हैं। आपको प्रेरणा देते हैं। वास्तविक अनुभव तो आपको ही लेना है।

महाराजा भर्थृहरी संन्यास के बाद जब अपने घर भिक्षा लेने आते हैं तब अपनी पत्नी को मैया कहकर पुकारते हैं। इसका अर्थ इतना ही है कि भीतर स्त्री और पुरुष का भेद मिट गया। भर्तुहरि संन्यास की

वास्तविकता को जानकर बच्चे जैसे निर्दोष बन गए। केवल पत्नी नहीं परंतु हर नारी उसके लिए माता ही रही।

दोस्तो, दुनिया तो समभाव में नहीं जी रही है। उसके लिए अभेद में जीना संभव नहीं है। सबमें समभाव कहाँ से लाएंगे? इसलिए कुछ तो संबोधन करना पड़ेगा। तब संतों ने नारी के लिए माता संबोधन रखकर दुनिया की नारियों को बहुत कुछ समझा दिया है, चेताया है, नारियां अगर समझें तो।

कुछ सिद्ध नारियों ने, शक्तियों ने ब्रह्मा विष्णु और महेश तीनों को पुत्र कहकर संबोधित किया है। क्योंकि वहाँ भी संवाद के लिए संबोधन अनिवार्य था। दोस्तो, संबोधन का अर्थ है – सम्यक उद्‌बोधन। जो संसार की सारी सीमाओ को पार कर गई हैं ऐसी नारियों ने पुरुषों के लिए "सुत","तात" ,"पुत्र" और "भ्राता" आदि संबोधन करके अपनी अवस्था की ओर ईशारा कर दिया है। इसका सीधा अर्थ है – वे संबोधन बता रहे हैं कि नर नारी के सांसारिक रिश्ते और बंधनों से हम ऊपर उठ चुके हैं। समझदार आदमी समझ जाता है। और नासमझों की उपेक्षा करनी पड़ती है।

प्यारे साधको!

विधि कहती है कि समभाव ध्यान में साधक को धारणा करनी है कि मेरी निंदा हो या स्तुति, कोई प्रेम से देखे या नफरत से, मुझे सुख मिले या दुःख, मेरा शत्रु हो या मित्र परंतु मुझे मेरे "मैं" से संपूर्ण बाहर निकल जान है। मुक्त हो जान है। फिर निंदा स्तुति भले होती रहे परंतु वह मेरी नहीं हो पाएगी, वह मेरा स्पर्श नहीं करेगी।

बाहरी तौर पर कोई उनको मेरा शत्रु मित्र भले मानते रहें परंतु मुझको दोनों में से किसी से भी लेना देना नहीं है। केन्द्र में कभी "मैं" नहीं होऊंगा। सुख–दुःख भले आते जाते रहे परंतु वह समभाव के कारण मुझे पीड़ित नहीं कर पाएंगे। दोस्तो, इस प्रकार की आत्मजाग्रति और अभेद भाव में प्रवेश ही परम मुक्ति है।

मैं कहती हूँ कि यह अवस्था आपका आत्यंतिक लक्ष्य बन जाए।





धारणा - 130

स्थितप्रज्ञ भाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 130

राग द्वेष बुद्धि से जागी, नित्य रमण करी ब्रह्म सम योगी।

ध्यान विधि - 130

राग-द्वेषयुक्त बुद्धि का शोधन करके ब्रह्म भाव में नित्य रमण करो।

आपका ध्येय बुद्धि को सुधारना नहीं है। आपका ध्येय बुद्ध स्वरूप बनना है। स्थितप्रज्ञावस्था को प्राप्त करना है। सूर्य के भ्रम से उजाला नहीं मिलता। कभी कभी किरणें भी मिले तो किरणों से भी खुश नहीं हो जाना। क्योंकि बुद्धि का बादल किरणों को कभी भी ढांक सकता है। आपको तो पूर्ण प्रकाश का साक्षात्कार करना है।

प्रिय साधको!

अब हम जा रहे हैं स्थितप्रज्ञ भाव ध्यान की ओर। जहाँ आपको मति को स्थिर करने का अभ्यास करना है। कभी कभी बुद्धि मन से भी ज्यादा परेशान करती है। सबसे पहले आपको स्वयं का थोड़ा अभ्यास करना पड़ेगा और देखना पड़ेगा कि आपकी बुद्धि आपके आध्यात्मिक विकास में विक्षेप कर रही है?

ध्यान रहे! आध्यात्मिक विकास में बुद्धि के द्वारा खलल पहुँचाने का अर्थ यह नहीं कि आप ध्यान कर रहे हो और बुद्धि योजनाएं बनाने लगे। इसे तो मैं बहुत छोटी खलल कहती हूँ। आरंभ में ऐसा तो होगा ही। क्योंकि नए नए साधक को ध्यान का लंबा अभ्यास नहीं होता। बुद्धि का अभ्यास पुराना है। और बुद्धि को अभ्यास है योजनाए गढ़ते रहने का। खैर!

आध्यात्मिक विकास में बुद्धि खलल नहीं कर रही है। इसका अर्थ यह करना है कि स्वार्थ बुद्धि किसीका शोषण नहीं कर रही है। विकृत बुद्धि परपीड़न या आत्मपीड़न नहीं कर रही है। वकृत बुद्धि अर्थ का

अनर्थ नहीं कर रही है। तामसी बुद्धि क्रोध आदि में प्रेरित नहीं कर रही है। राजसी बुद्धि आपको आध्यात्मिक माहौल से विचलित नहीं कर रही है। मंद बुद्धि आपको ऐसा तो नहीं कह रही कि ध्यान छोड़ दो। व्यापार बुद्धि आपको अध्यात्म से हटाकर धर्म को धंधा बनाकर तो प्रेरित नहीं कर रही है। कुबुद्धि विनाश के मार्ग पर तो नहीं घिसट रही है.. ..?

इस ध्यान विधि में सबसे पहले तो आपको अपनी मति का सूक्ष्म अभ्यास करना होगा। उसे देखते रहो, देखते रहो, उसकी चालबाजियों को देखते जाओ। उसे अपनी काम करने दो। आप एक ही काम करेंगे कि उससे प्रेरित नहीं होंगे। मति के खेल को देखते रहेंगे। एक दिन अचानक आप महसूस करेंगे कि मति का परिमार्जन हो गया। उसका शुद्धिकरण हो गया। अब दुन्यवी दावपेचों में उसका कोई रस नहीं रहा। अब निरर्थक बातों में वह साक्षी होती जा रही है। छोटी मोटी बातो में मतिने राजनितियाँ आजमाना छोड़ दिया है। वह शांत होती जा रही है। यह इस ध्यान विधि का दूसरा सोपान है।

प्यारे साधको!

फिर से एक बार आइए ध्यान विधि की ओर। यह ध्यान तीन हिस्सों में होगा। पहले तो अपनी टेढ़ी मेढ़ी बुद्धि की प्रवृत्तियों को उसके संग हुए बिना देखते रहो। वह क्या क्या करना चाहती है? क्या क्या कराना चाहती है? क्या कहना चाहती है? यह सब आपको सिर्फ दृष्टा बनकर देखना है? उसका अनुसरण तनिक भी नहीं करना है। उसकी निर्थक बातों पर दुर्लक्ष रहो। उपेक्षा करते रहो। दूसरे स्टेज में मिथ्या बातों में निष्क्रिय होती जाती हुई मति के स्वरूप को देखो। और तीसरे स्टेज में

आपके रूपांतरण को देखो। मस्तिष्क स्थिर होते ही स्थितप्रज्ञता में प्रवेश होता है।

प्यारे साधको!

गीता के दूसरे अध्याय के कुछ श्लोको में स्तितप्रज्ञता की बातें की गई हैं। श्लोक और बातें बहुत सुंदर हैं। परंतु व्याख्याओं से क्या? श्लोक तो ज्यादा से ज्यादा आपको थोड़ा बहुत स्मरण करा सकते हैं कि तुझे क्या करना है? कैसे जीना है? कैसा होना चाहिए? इससे आगे कुछ भी नहीं।

मैं ऐसे कई लोगों को जानती हूँ कि जिन्होंने स्थितप्रज्ञ के लक्षणों के सारे श्लोक रट लिए हैं। कहीं भी स्थितप्रज्ञ की बात निकलती है तो फट से संदर्भ देने के लिए रटे हुए श्लोक बोलने लगते हैं। परंतु वे खुद मोस्ट फिकल माइन्डेड होते हैं। अति चंचल मन के लोग जब अपने मुंह से इतनी उत्तम व्याख्याएं करते हैं तब वह आदमी कम और सैल्फस्टार्ट रेकोर्डर ज्यादा लगता है। खैर छोड़ो!

दोस्तो! इस विधि का तीसरा स्टेज विशेष सजगता मांग लेता है। वही कसौटी की क्षण हैं। स्थितप्रज्ञता का दर्शन जब अन्य को आपमें होने लगे तभी साधना पूरी हुई समझो।

गीता में कृष्ण से अर्जुन पूछता है कि स्थितप्रज्ञ की व्याख्या क्या है? स्थितप्रज्ञ कैसे बोलता है? कैसे बैठता है? कैसे चलता है? ये सब आप मुझे बताईए।

दोस्तो, ये चलने, उठने, बैठने की जो बातें हैं वे बाहरी स्तर की नहीं हैं। इससे यह समझना है कि मनुष्य के व्यवहार में स्थिर बुद्धि का दर्शन कैसे होता है? तब कृष्ण व्याख्या करने की कोशिष करते हैं। वैसे तो यह अवस्था व्याख्या से पर है। ऐसा मैं स्पष्ट मानती हूँ। प्रत्येक प्रबुद्धावस्था

अव्याख्यायित हो जाती है। हर व्याख्या वहाँ छोटी पड़ जाती है। अधूरी लगती है। फिर भी कुछ शब्दों का आधार लेकर सुपात्र जिज्ञासु साधक के संतोष के लिए हमारे गुरू सत्य की और कुछ इशारा करते आए हैं। कृष्ण भी यही कोशिश करते हैं।

स्थितप्रज्ञ के लक्षणों को बताते हुए कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे अर्जुन स्थितप्रज्ञ दु:ख में उद्वेगरहित मन वाला और सुख में स्पृहा न रखने वाला होता है। जिसका भय और क्रोध से वितराग हो गया हो। जिसके मन की समग्र कामनाएं जलकर भस्म हो गई हों और जो आत्मा से आत्मा में संतुष्ट हो .. .. .. जैसे कछुआ सावधानी से अपने सर्वअंगों को समेट कर रखता है ऐसे जिसने इन्द्रियों के विषयों में से मन को खींच लिया है वह स्थिर बुद्धिवाला है .. .. ..।

प्यारे साधको!

संवाद बड़ा प्यारा है। तंत्र इस बात पर कोई चर्चा या पठन पाठन नहीं करता परंतु उस अवस्था में सीधा प्रवेश करने के लिए कहता है। ईसू और मंसूर इस अवस्था तक पहुंच गए थे। महम्मद और मीरा में इस अवस्था का दर्शन लोगों ने अनेक बार किया था।

दोस्तो, कछुए का प्रतीक ठीक है। वेद व्यास को महाभारत जैसा महाग्रंथ लिखना था तो थोड़ा सहयोग मिल जाए ऐसे प्रतीकों का उपयोग कर लिया। परंतु कृष्ण द्वारा स्थितप्रज्ञ के लिए दिया हुआ यह प्रतीक कुछ खास जमता नहीं है। कछुआ तो जब पानी में तैरता है और कोई कंकड़ आदि से जल मं तरंग पैदा होती है तो वह भय का मारा संकुचित होकर खुद के अंगों को समेट लेता है। तो यह प्रतीक मुझे नहीं जमा।

स्थितप्रज्ञ के लिए तो उपनिषद् ने पहले से ही कह दिया है कि वह भय और क्रोध से ऊपर उठ गया होता है। कछुआ भय से संकुचित हो जाता है। जबकि स्थिरबुद्धिवाला इतना सजग है कि उसे इन्द्रियों के विविध विषय विक्षेप नहीं पहुंचा सकते। स्थितप्रज्ञ कभी संसार से पलायन नहीं करता। संसार में विहार करता हुआ भी निर्भय रहता है। वास्तव में भय और निर्भयता एक ही बात के छोर हैं। वे एक दूसरे से विपरीत नहीं हैं। मैं कहूंगी कि स्थितप्रज्ञ भय के पार चला गया होता है।

प्यारे साधको!

एक दूसरा प्रश्न भी काफी लोगों के मन में उठता है। बात चल ही रही है तो एकाद बात और भी हो जाए। कुछ लोग मुझे पूछते हैं कि गुस्सा बहुत आ जाता है। वह कंट्रोल नहीं हो सकता, क्या करें?

मैं कहती हूँ कि मेरे पास कोई ऐसी दवाई नही है ना आज कल के धंधादारी बाबाओं की तरह रेडीमेड आशीर्वाद या तावीज–बावीज भी नहीं है कि जो आपको दे दूँ तो आप अक्रोध को उपलब्ध हो जाओ।

मुझे आपको भ्रम के विश्व में नहीं ले जान है कि मैं आपको मंत्र, उपवास, रुद्राक्ष या तुलसी का दाना या कुछ मंदिरों में जाकर पूजाविधि करने को कह दूँ और कहूँ कि जा बच्चा! अब तेरी बीवी भी क्रोध नहीं करेगी।

प्यारे साधको!

जैसे शांति मन की एक अवस्था है वैसे ही काम, क्रोध, लोभ ये भी आपके मन की ही अवस्थाएं हैं। उन सबकी निंदा करना यह पाप है और उनसे जागना ये है पुण्य। सारे पाप अज्ञान में से पैदा होते हैं। काम, क्रोध आपकी प्रकृति के ही अंश हैं। उन्हें दबाकर आप विकृत हो जाएंगे।

आपकी असलियत दबते ही आप अस्वाभाविक वर्ताव करेंगे और प्रकृति के स्वाभाविक गुण विकृतियाँ बनकर किसी दूसरे ढंग से प्रगट होंगे। इससे तो आप अपनी वास्तविकता में अच्छे थे। भले जैसे भी थे; मानो कि क्रोधी थे तो गुस्सा निकल जाने के बाद तो नोर्मल रहते थे। ढोंग में तो कहीं के भी न रहे। खैर! आपको ऐसा नहीं करना है। अब आप पूछेंगे कि तो क्या करना है?

प्यारे साधको!

काम, क्रोध जितने वास्तविक हैं उससे भी ज्यादा वास्तविक है चिदानंद। जो आपका मूल स्वरूप है। काम, क्रोध तो आपका ऊपरी स्तर है। वह तो आपको रक्त में मिला है। मतलब रक्त के स्तर तक ही है। परंतु आंतरिक शक्ति तो स्वयं परमात्मा है। उसका अंशरूप से आपमें उतरना ये तो कुदरत की देन है। उसकी मर्जी है। वह परमात्मा ही आपका असल रूप है।

जैसे जैसे आप इस ध्यान विधि की गहराई में उतरते जाएंगे वैसे वैसे आपको रूपांतरण की अलग अलग भूमिकाओं का अनुभव होगा। जैसे कि प्रारंभ में मन के उपद्रव, फिर मति का चांचल्य बाद में धीरे धीरे बुद्धि का निर्मल होना। फिर बुद्धि, एकाग्रता, समझ और सजगता में अवगाहित होकर परिशुद्ध प्रज्ञारूप बनेगी और जिसे सात्विकी बुद्धि कहते हैं। जहाँ आप उस विशुद्ध प्रज्ञा के कारण स्वयं में राग द्वेष, ईर्षा, दंभ आदि किसी भी क्लेशों को नहीं पाएंगे।

परंतु याद रहे, वह प्रज्ञा योजनाओं का प्रकार बदलेगी। जो बुद्धि पहले खंडन करती होगी वह अब मंडन करती है। पहले वाचाल थी तो अब मौन रहती है। पहले विघटनात्मक प्रवृत्ति में रस लेती थी अब

संघटनात्मक प्रवृत्ति में व्यस्त रहती है। परंतु अभी सक्रिय तो है, स्थिर नहीं हुई है।

प्यारे साधको!

परंतु सावधान रहें। आपको यहाँ अटक नहीं जान है। आपका ध्येय बुद्धि को सुधारना नहीं है। आपका ध्येय बुद्ध स्वरूप बनना है। स्थितप्रज्ञावस्था को प्राप्त करना है। सूर्य के भ्रम से उजाला नहीं मिलता। कभी कभी किरणें भी मिले तो किरणों से भी खुश नहीं हो जाना। क्योंकि बुद्धि का बादल किरणों को कभी भी ढांक सकता है। आपको तो पूर्ण प्रकाश का साक्षात्कार करना है।

तो अब उतरो विधि में बुद्धि के खेल को देखते जाओ। साक्षी बने रहो। आपकी ही बुद्धि से आप ठगे जाओ ऐसा न हो। कोई जल्दी नहीं है। आपका ज्ञान में प्रवेश हो जाए उससे आपके भीतर एक महोत्सव होगा। परंतु आपके आध्यात्मिक उत्थान के साथ दुनियाँ को कुछ लेना देना नहीं है। आपके लिए कोई शील्ड लेकर नहीं खड़ा है। ज्ञानियों के लिए तो ज़हर का कटोरा, सूली, तीर और तलवार ही सदा प्रतीक्षा कर रहे हैं। परंतु परमात्मा का प्यार आपके ऊपर कायम बरसता रहता है।

उसकी आगोश में बंदा बेधड़क पलता रहता है।
नज़र आता नहीं फिर भी वो तुझ को प्यार करता है।

सितमगर संत शैतानों को भी पनाह देता है।
रहम का दरिया है, नादान दिल कैसे समझ पाए?

प्यारे साधको!

अब उतरो विधि में अब विधि को समझने के लिए कुछ बाकी नही रहता है। इससे ज्यादा बताने का कोई उपाय भी नहीं है। जितना

बताएंगे उतना कम पड़ जाएगा। अब बचता है अनुभव करना। आप स्थितप्रज्ञता के अनुभव से गुजरकर कृतार्थ हो जाओ।



धारणा - 131

मनोमुक्तिभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 131

मन चंचल अति जहं तहं भटके, तेहि को तेहि से भान यह उमटे।
बनि निर्विकल्प वापस में लौटुं, बनि निष्काम ब्रह्म में पहुंचुं।
अस अभ्यास से वश ते होई, साधक जो समझावे तेही।।

ध्यान विधि - 131

यहाँ वहाँ भटकते मन के साथ नहीं भटकने का तीव्र संकल्प करके अपनी मूल निर्विकल्पावस्था में लौटकर निष्काम ब्रह्म को उपलब्ध हो जाओ ।

मन में मन से ही बोध जगाओ। मन को मन से ही समझाओ, मन से ही मन को मनाओ। उसे बड़े प्यार से संभाल लो। वह जहाँ जहाँ भटक रहा है, वहाँ वहाँ से उसे धीरे से वापस बुलाओ। आप उसके साथ शत्रु की भांति नहीं परंतु एक बच्चे के साथ जैसे काम लेते हो ऐसे काम लेना सीख लो। उसे समझाओ, फुसलाओ, पुचकारो, वह आपके पास जरूर वापस लौटेगा। आपका अर्थ है विशुद्ध चेतना।

प्रिय साधको!

मेरे पास आने वाला प्रत्येक साधक एक प्रश्न तो अवश्य करता है कि मन संकल्प विकल्प बहुत करता है। क्या करें? दोस्तों, मन को जो करना चाहिए वही मन कर रहा है। वह तो मन का स्वभाव है। कल्पना जाल रचने में ही मन का अस्तित्व है। अगर मकड़ी से कोई कहे कि वह आपके घर में भले रहे परंतु जाल न बुने तो यह संभव है! कांटों से कोई कहे कि रास्ते पर भले उगे परंतु किसीको लगे नहीं, तो संभव है! भंवरे से कोई कहे कि बगिया में भले रहे परंतु गुनगुनाए नहीं तो यह संभव है!!

प्यारे साधको!

जैसे जीव प्राणी मात्र अपने अपने स्वभाव में जीता है अपनी अपनी प्रकृति में जीता है वैसे ही मन की भी एक प्रकृति है। वह कुछ गलत नहीं कर रहा है। वह तो अपनी प्रकृति के अनुसार कर रहा है। सही या गलत तो हमारे लिए होता है। इसी कारण तो सारे तत्ववेत्ता परमात्मा और प्रकृति ऐसे दो विभाग करके तत्वज्ञान को समझाने की कोशिश करते हैं।

अनर्गल कल्पनाएं करते रहना यह मन की प्रकृति है। और शांत, मौन और प्रसन्न रहना यह परमात्मा के गुण हैं। आपके पास परमात्मा भी है और प्रकृति भी। प्रकृति अनेक अनेक रूप में प्रगट होती है। वह कभी मन, कभी बुद्धि, कभी अहंकार इत्यादि के पराक्रमों के द्वारा अपना असल रूप दिखाती रहती है।

दोस्तो!

प्रकृति से लड़कर आप उसे जीत नहीं पाओगे। इसलिए तंत्र लड़ना नहीं सिखाता वह प्रकृति का सहयोग लेना और उसका सहयोग करके उसके पार चले जान सिखाता है।

प्यारे साधको!

विधि कहती है कि मन के सामने हठ मत पकड़ो। मन को मन से ही जीत लो।

दोस्तो, मन सूक्ष्म है, चंचल है, वायु से भी वेगवान है, उस वेग और चंचलता के कारण उसका इधर उधर भटकना और दिशा बदलना स्वाभाविक है। प्रश्न वहाँ खड़ा होता है कि वह आपको भी भटका देता है। क्यों? क्योंकि आपने ऐसा कभी सोचा ही नहीं है कि मैं और मन दोनों अलग हैं। आप अगर मन से मुक्त होना चाहते हैं, मन की गुलामी से छुटकारा पाना चाहते हैं तो सबसे पहले तो एक सत्य को समझना होगा कि आप मन नहीं हैं। और न मन आपका स्वामी है। मन माया के द्वारा निर्मित एक ऐसी उपाधि है कि वह मनुष्य को सृष्टि की ओर से सूक्ष्म रूप में विरासत में मिली है।

पृथ्वी पर चौरासी लाख योनियाँ हैं, ऐसा भारतीय मनीषी कहते हैं। उनमें से मानव शब्द मन पर से आया है। जिसके पास नित्य नया मन

है वह है मानव। कुछ लोग कहते हैं कि मनुष्य शब्द भी मन पर से आया। मैं कहती हूँ, शब्द भले कहीं से भी आया हो। परंतु अर्थ में थोड़ा फेरफार कर दो। मैं कहूंगी कि जो मन का ईश है वह है मनुष्य।

वास्तव में मन के स्वामी आप हैं परंतु परिस्थित कुछ उल्टी है। मैंने एक भजन में कहा है कि

साधो उलटी बात भई
बिन मालि के पाप्च बगीचे, बेली खूब भई .....
घास फूस दूब खूब खूब फॅली, कहीं न सुबास रही ...
साधो.....
नव दरवाजे खुले छोड़कर, तुझको नींद भई
चोर लुटेरे लूटकर भागे, जब तक भोर भई
साधो.....
नॉकर राजा बनकर बॅठा, बूप्द से बिगड़ गई
'मोहिनी' पाँच ह्लधान नगरमें, रोनक फिरभी नहीं
साधो.....

नौकर राजा बनकर बैठ गया है। जिस आदमी में सत्ताधीश का एक भी गुण न हो और केवल नौकर की हैसियत हो ऐसा औकातहीन आदमी सत्ता पर आएगा तो क्या करेगा? सबसे पहले तो वह सत्ता करने के लिए जो योग्य है उसका विरोध करेगा। या ऐसे पात्रों को खत्म कर देगा। मन की भी यही चाल है।

दोस्तो, मन मनुष्य को मूर्छा में रखना चाहता है। वह सजगता के विपक्ष में है। क्योंकि आपकी सजगता में उसकी असलामती है। आपकी सजगता से उसकी असलियत खुल जाती है। आपकी बेहोशी में आप असलामत और मन सलामत है।

तंत्र कहता है कि आप भी सलामत रहो और मन से शत्रुता भी मत करो। किसीसे शत्रुता करने के लिए पहले स्वयं में नकारात्मकता को जन्म देना पड़ता है। पहले शत्रु नहीं जन्मता, पहले शत्रु भाव का जन्म होता है, फिर मन शत्रुता पैदा करता है। तंत्र आपको सारे लौकिक भावों से ऊपर उठाकर निर्विकल्प अवस्था प्रदान करता है। जिसे आप भावशून्यता भी कह सकते हैं। ज्ञानियों की भावशून्यता पागलों जैसी नहीं होती। वह तो पागलपन का अतिक्रमण है।

विधि कहती है कि मन में मन से ही बोध जगाओ। मन को मन से ही समझाओ, मन से ही मन को मनाओ। उसे बड़े प्यार से संभाल लो। वह जहाँ जहाँ भटक रहा है, वहाँ वहाँ से उसे धीरे से वापस बुलाओ। आप उसके साथ शत्रु की भांति नहीं परंतु एक बच्चे के साथ जैसे काम लेते हो ऐसे काम लेना सीख लो। उसे समझाओ, फुसलाओ, पुचकारो, वह आपके पास जरूर वापस लौटेगा। आपका अर्थ है – विशुद्ध चेतना।

दोस्तो, याद रखो! मैंने कहा ना, कि मन बच्चे जैसा है। थोड़ी देर में फिर से दौड़ने लगेगा, भागेगा, हाथ से निकल जाएगा, चंचल है ना, फिर से वापस बुलाओ। आपकी समग्र चेतना उसके पीछे ही रखो। जैसे माँ अपना संपूर्ण ध्यान बच्चे के पीछे देती है। बच्चा कहीं भी खेलता हो, वह खेल खेल में माँ को भूल भी जाता है परंतु माँ बच्चे को नहीं भूलता। ठीक इस तरह से ही आपको बरतना है मन के साथ।

प्यारे साधको!

बैठो ध्यान में। इस ध्यान में आपको मन के प्रति ही ध्यान देना है। यही आपका ध्यान है। मन की प्रत्येक क्रिया, प्रक्रिया, प्रतिक्रिया और पद्धतियाँ सबको देखते रहो। उसके संग आपको भागना नहीं है। बस,

यही आपकी परीक्षा है। वह जहाँ जहाँ जाए वहाँ से आपको उसे वापस बुलाना है। आपको मन के साथ नहीं जाने का मतलब है शारीरिक रूप में तो बिलकुल नहीं परंतु इन्द्रियों को भी मन के साथ नहीं जाने देनी है। आपकी चेतना को सजग रखनी है।

इन्द्रियाँ क्षणजीवी हैं मन को ईंधन देती रहती हैं। और इन्द्रियों को आपकी चेतना से ईंधन प्राप्त होता है। परंतु आपकी चेतना इतनी सजग होनी चाहिए कि ऊर्जा के प्रवाह को मन या इन्द्रियों की और न मुड़ने दे। वह इतनी प्रबल होनो चाहिए कि मन के बचकानी क्रियाकलापों से ऊब भी न जाए। उसका विरोध भी न करे। उसकी उपेक्षा भी न करे परंतु वह जहाँ जहाँ जाए वहाँ वहाँ से उसे धैर्य के साथ उसे मूल स्रोत में स्थिर करें।

प्यारे साधको!

अभी तक एसी कई विधियाँ आई हैं जहाँ मैंने कहा है कि मन की उपेक्षा करो, उसके प्रति लक्ष्य न दो, उसके प्रति साक्षी रहो और यहाँ मैं कुछ और कह रही हूँ। इससे यह मत समझना कि मेरे निवेदन विरोधाभासी हैं। जब मैंने वह कहा था तब ऐसा करना जरूरी था। यहाँ जो कह रही हूँ अब यह कहना जरूरी है।

यहाँ मैं कहती हूँ कि मन को हर जगह से बिना हारे, बिना थके वापस बुलाओ, बुलाते रहो, बुलाते रहो, समझाते रहो, टोकते रहो, यह एक अर्थ में स्वयं को ही समझाना है क्योंकि आखिर मन आपका ही एक सूक्ष्म अंग है, आपसे भिन्न नहीं है, आपका ही अंश है। वह लौटकर आपके पास ही आएगा। क्योंकि आखिर आत्यंतिक विश्राम स्थान तो आप हीं हैं। आपमें से पैदा हुआ मन अंत में आप में समा जाएगा। परंतु आपको उसे

समझाना पड़ेगा, बहुत समझाना पड़ेगा। इस संदर्भ में मैंने एक भजन लिखा है –

मनवा कब तक मूढ़ रहेगा तक तक ईक्ष्र गूढ़ रहेगा?
अप्तर की आप्खो से मनवा देखलो तुम जो देख सको
साप्स को साध सको तो साधो फिर केवल तुम शु. रहेगा
मनवा कब तक मूढ़ रहेगा
ज्ञ्यान को तुम आधार बनाकर पार करो भव सागर को
''मोहिनी'' मद्गती में डूबो फिर सब खोकर भी बु. रहेगा
मनवा कब तक मूढ़ रहेगा

प्यारे साधको!

साधना पराकाष्ठा पर पहुंचते ही एक क्षण ऐसा आएगा कि मन परिपक्व हो जाएगा, विशुद्ध हो जाएगा, समझदार हो जाएगा। एक चंचल और शरारती बच्चा बड़ा होकर जैसे शांत हो जाता है। ठीक वैसे ही। परंतु वह कब होगा जब माँ उसके प्रति पूरा पूरी लक्ष्य दे तब।

दोस्तो, मन का भटकना जब बंद होगा तब वह निष्काम हो जाएगा। आपकी संकल्प शक्ति और निरंतर साधना के बल से वह मिल जाएगा अपने मूल स्रोत में। असत में पूरा विश्व ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है और उसी में समा जाता है। मन भी ब्रह्म बन जाएगा। वह असत्यों में से परम सत्य की ओर आ जाएगा। परंतु याद रहे, साधक को स्वयं के एक आदर्श और ज्ञानी माता जैसा बनना पड़ेगा। और आप मन की जननी ही तो हैं। क्योंकि मन आपका है। आपसे ही तो जन्मा है। आपका जब शुद्ध मातृत्व एक प्रबुद्ध मातृत्व विकसित होगा तो बिगड़ा हुआ बच्चा सुबह के भूले की तरह शाम को घर आ जाएगा। यही है मनोमुक्ति भाव ध्यान।

धारणा - 132

भयमुक्तिभाव ध्यान

ध्यान सूक्ति - 132

परमात्मा सदा निर्भयकारी, सदा अद्वैत अशेष अविकारी।
जो ते सर्व रूप में बिराजे, तो भय किससे अभय है तासे।।

ध्यान विधि - 132

परमात्मा सदा निर्भय करने वाले अद्वैत, अशेष और अविकारी तथा सर्व में बिराजित है - इस सत्य को समझकर निर्भय हो जाओ ।

निर्भय होने का एक ही रास्ता है। विराट के प्रति समर्पण। और सुख दुःख में साक्षी रहना सीख लो। उसकी मरजी में अपनी मरजी को विलीन कर देना सीखो। उसका न्याय कल्याणकारी ही होगा ऐसी अडिग आस्था रखो। अपनी साधना में सन्निष्ठ रहकर आगे बढ़ो।

प्रिय साधको!

अब चलो एक अनिवार्य विधि की ओर। मैं इस विधि को अनिवार्य विधि इसलिए कह रही हूँ कि भय नाम का रोग हरेक मनुष्य में जन्मजात है। शास्त्र भी कहते हैं कि मनुष्य जन्म से ही भयभीत है। निर्भय होने का मार्ग हर इन्सान ढूंढ रहा है।

दोस्तो, मैं कहूँगी कि दुनिया में किसी एक प्रकार का भय नहीं है। हजार हजार प्रकार के भय हैं। जो जन्मता है उसे मृत्यु का भय, बच्चे को माँ की गैरमौजूदगी में लगता हुआ भय, जवानी को फिसलने का भय, प्रौढ को बूढा होने का भय, और बूढे को मृत्यु का।

पुराण कहता है कि

अहस्तानी सहस्तानी द्विपदानी चतुष्पदम्।

हाथ बगैर के जीव हाथ वालों का भोजन बनता है। दो पैर वाले चार पैर वालों का भोजन...। इस तरह भय की यह परंपरा चलती ही रहती है। भय मनुष्य को जीन्स में मिला है। कैसे बचेंगे उससे?

दोस्तो, तंत्र कहता है कि मनुष्य का परिशुद्ध स्वरूप परमात्मा ही है। अंत में तो सबपर ब्रह्म का ही अस्तित्व है। जो जन्म के पार है। अर्थात ब्रह्मत्व एक ऐसी अवस्था है जो रक्त के संस्कारों को पार कर जाती है।

प्यारे साधको!

मनुष्य साधना के द्वारा जो जन्म मृत्यु के पार भी जा सकता है तो उसके सामने जीन्स तो बड़ी छोटी चीज़ है। इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि सत्संग में आकर, ध्यान में आकर, ज्ञान में प्रवेश करके कुछ लोग रक्त के संस्कारों के पार जा चुके हैं। जैसे कि अंगुलीमाल, लुटेरा वालिया, जेसल जाड़ेजा, आपा विसामी, आपा जादरा.. ..।

हाँ, फर्क इतना है कि उपरोक्त सभी लोग आपसे ज्यादा भयभीत थे। ऐसा सुनकर शायद आपको आश्चर्य लगेगा। क्योंकि वे लोग तो दूसरों को भयभीत करने के लिए कुख्यात थे। और मैं कहती हूँ कि वे लोग आपसे ज्यादा भयभीत थे। हाँ, यह सच है। जो ज्यादा भयभीत है, वही दूसरों को भय में रखने का प्रयत्न करता है।

दोस्तो, अंधेरी आलम में क्या होता है? गैंग वॉर में यही मनोविज्ञान काम करता है, कि कोई मुझे कुचल दे उससे पहले मैं उसे खत्म कर दूं या दबा दूँ। कोई मुझे डराए इससे पहले मैं सबको डराऊँ, कोई मुझे धमकाए इससे पहले मैं उसे धमकाऊं, कोई मुझे मार दे उससे पहले मैं दूसरे को उड़ा दूँ।

प्यारे साधको!

आपने कभी सुना कि महावीर ने किसीसे झगड़ा किया? बुद्ध ने किसीसे मारधाड़ की? मूसा ने किसीको धमकाया? महम्मद ने कभी

निर्मम कत्लेआम किया? राम अकारण लंका में गए! ऐसा कभी नहीं सुना है और कभी नहीं सुनोगे। पहला वार करना ये दुर्बलता की निशानी है। बलवान तो समझदारी से काम लेता है। और मैं उसे बलवान कहती हूँ कि जो निर्भय हो।

दोस्तो, तो निर्भय कौन है? निर्भय वह है जिसका वितराग में प्रवेश हो गया है। जो रागद्वेष से पर हो गया है। जो आसक्तियों और इच्छाओं से पर हो गया है।

महाराज भर्तृहरि ने सौ सौ श्लोक में तीन ग्रंथ लिखे हैं। तीनों शतक अद्‌भुत हैं। जो श्रृंगार शतक, नीति शतक और वैराग्य शतक के नाम से प्रसिद्ध हैं। एक ग्रहस्थी, एक राजा और एक वितरागी तीनों के लिए ये ग्रंथ कुछ अपूर्व संदेश दे रहे हैं। जिनमें से वैराग्य शतक का एक श्लोक यहाँ मुझे याद आ रहा है –

भोगे रोग भयं, कुले च्युति भयं, वित्ते नृपालाद भयं,
माने दैन्य भयं, बले रिपु भयं, रूपे जराया भयं
शास्त्रे वादी भयं, गुणे खल भयं, काये कृतांता भयं,
सर्वे वस्तु भयान्वितं भूविनृणाम वैराग्यमेवाऽभयं

अर्थ ऐसा है कि भोग भुगतने से रोग का भय है, उत्तम कुल को कलंक का भय है, धन को राजा या सरकार का भय है, मान सन्मान मिल रहा है तो कभी दीनता का सामना तो नहीं करना पड़ेगा! ऐसा भय रहता है। बलवान को शत्रु का भय है। सौन्दर्य को वृद्धावस्था का भय है। ज्ञानी को वाद विवाद करने वालों से भय है। गुणी जनों को दुर्जनों से भय है। शरीर को मृत्यु का भय है। इस तरह जगत में सर्ववस्तु भय उत्पन्न करने वाली हैं। परंतु केवल वैराग्य में ही निर्भयता है।

प्यारे साधको!

अब आपके मन में प्रश्न उठेगा कि वैराग्य किसे कहेंगे? तो याद रहे वैराग्य भगवे वस्त्र, मुंडन, दाढी जटा, धार्मिक चिन्ह, गृह त्याग या कंचन कामिनी का त्याग अथवा अरण्यवास में नहीं; वैराग्य का अर्थ है इच्छाओं के पार जाना। किसी भी प्रकार के राग उत्पन्न होने की संभवनाओं को शून्य बन जाना ही वितराग है। सच्चे सन्यास में राग के बीज भस्मीभूत हो जाते हैं।

दोस्तो, ये राग के बीज कब खत्म होंगे? यह प्रश्न प्रत्येक साधक के लिए एक प्राण प्रश्न है। मैं कहती हूँ कि साक्षी भाव से, सजगता से, निरंतर अभ्यास से, परम तत्व में पूर्ण भरोसा करने से, उसकी मर्जी को ही अंतिम फैसला मानकर स्वीकार करने वालों के लिए रास्ता आसान बन जाता है। स्वयं को उसकी बगिया के पुष्प समझ लो, खिलाना या मुर्झाना उसके हाथों में है।

तेरी बगिया के फूल हम बने, ह्लेम नदिया के फूल हम बने

तेरी मरजी में मरजी हमारी, कोई मरजी ना मरजी हमारी
फिर भी आखिर हॅ अरजी हमारी, तेरे चरनों की धूल हम बनें
तेरी बगिया के फूल..........
उड़े अङ्गयाच्म के आसमाप में, ड्डुकें सच्च्कर्म की डालियों पर
गुन गुनाएए सदा नाम तेरा, भाव गुलशन के बुलबुल बने
तेरी बगिया के फूल..........
ङ्गयान सरिता में बहते रहे हम, अपने अप्दर ही डूबते रहे हम
ह्लति क्षण क्षण सप्भलते रहे हम, सूक्ष्म पाये ना द्गथूल हम बनें
तेरी बगिया के फूल..........

'ॐ सर्वाच्मने नमष्ट' कह कर झुके हर हाल में हर दिशा में
वद्व के रप्ग बदले न बदले, राम के रप्ग मशगूल बने
तेरी बगिया के फूल..........
सदा नाचे कूदें ऑर गाएए, गीत आनप्द के सबको सुनाएए
बझिझक हर द्गिथति में झुकाएए, ज्ञान गप्गा का मूल हम बनें
तेरी बगिया के फूल..........
'मोहिनी' की हॅ तुझ को विनती, तू नहीं तो हमारी क्या गिनती
जिये जीवन को जीवन समझकर, तेरे बच्चों की भूल ना बने
तेरी बगिया के फूल..........

प्यारे साधको!

तेरी मरजी में मरजी हमारी .. .. बस इतनी ही बात दिल में उतर गई तो यह शरणागत भाव और समर्पण का रास्ता ज्यादा आसान है। फिर आपके लिए कोई भय नहीं रहेगा। मीरा और सोक्रेटिस ज़हर को ज़हर मानकर नहीं परंतु अस्तित्व का न्याय, परमात्मा की मरजी, प्रियतम की इच्छा मानकर स्वीकार कर लेते हैं। तब न ज़हर का भय रहता है न ही जहर देने वाले के प्रति द्वेष भाव।

प्यारे साधको!

निर्भय होने का एक ही रास्ता है। विराट के प्रति समर्पण। और सुख दुःख में साक्षी रहना सीख लो। उसकी मरजी में अपनी मरजी को विलीन कर देना सीखो। उसका न्याय कल्याणकारी ही होगा ऐसी अडिग आस्था रखो। अपनी साधना में सन्निष्ठ रहकर आगे बढ़ो।

दोस्तो, विधि कहती है कि ऐसा दृढ़ भाव करो कि परमात्मा सदा निर्भय करने वाले हैं, अद्वैत हैं, अशेष हैं, अविकारी हैं, और सबमें समान

रूप से बसते हैं। जब सबमें ईश्वर ही ईश्वर है तो फिर डरना किससे? और जब आप समर्पित हैं तो फिर क्या मौत क्या जिंदगी? सब फैंसला छोड़ दो उसके ऊपर। आपके लिए अगर ऐसा संभव है तो उतरते रहो इस ध्यान विधि में और निर्भयता का अनुभव कर लो।



एक महाचेतना के परिचय का प्रयास.....

कोई व्यक्ति हो तो हम परिचय भी दें। परंतु एक घूमती फिरती चेतना का परिचय शब्दों से देना कैसे संभव होगा!

प्रबुद्धत्व के प्रवाह में गुरुमैया डॉ हरेश्वरीदेवीजी एक नया उद्‌गम है, एक अपूर्व आरंभ है। आज तक के किसी भी धर्म संप्रदाय सूत्रों में न जुड़कर समाज को एक नई दिशा दर्शन कराने वाली एवं धर्मक्रांति करने वाले तथा ध्यान-योग में एक विशिष्ट खोज करके ध्यान-योग में उत्क्रांति करने वाली विश्व की

प्रथम नारी ऊर्जा है।

प्रत्येक युग में ज्ञान और भक्ति के मार्ग में एक विशेष नारी ऊर्जा का प्रभाव रहा है। वह फिर गार्गी हो, मैत्रेयी हो या मीरा परंतु ध्यान मार्ग में पूज्य गुरूमैया एक नया शुभारंभ है। जिसकी नींव कोई धर्म या दार्शनिक परंपरा पर नहीं है। बचपन से ही निर्भीकता, तेजस्विता, स्वतंत्रता एवं वाणी में ओजस्विता वे उनके सहज गुण रहे हैं।

एकांत स्थान में रहना, प्रकृति को आत्मसात करना और कठिन साधना पद्धतियों से गुजरना एवं शास्त्रों का गहन अध्ययन करना यह गुरूमैया का स्वभाव है।

तथाकथित धर्मगुरुओं, द्वेषपूर्ण हृदय के लोगों, और काले पत्रकारित्व की ओर से उठती हुई बाधाओं के सामने हिमालय की भांति अडिग रहकर समाज को सही धर्म के लिए जगाना ये गुरूमैया का अभियान रहा है।

ऐसी अपूर्व नारी ऊर्जा का जन्म २४ जून अषाढी बीज सन् १९६४ में हुआ। आरंभ के पैंतीस वर्ष तक धर्मक्रांति और ध्यानक्रांति के द्वारा मानव मन के परिमार्जन का कार्य किया और अब गुजरात के संस्कार नगरी वडोदरा में ध्यान मंदिर की स्थापना करके लोगों को आध्यात्मिक रूप से सजग कर रहीं हैं। भौतिक सुखों से तृप्त तथापि अतृप्त और शांति के खोजिओं के लिए पूज्य गुरूमैया एक कल्पवृक्ष बनकर आध्यात्मिक छत्रछाया दे रहीं हैं और ध्यान के माध्यम से मनुष्य को आत्मसंतोष के विश्व का दर्शन उनके भीतर ही करा रहीं हैं। पूज्य माँ कहतीं हैं कि–

मुसाफिर हूँ जगाने आई हूँ ख़लक़त के लोगों को।
चली जाऊं तो तुम चुपचाप मेरे काम में लगना।।

उपरोक्त मुक्तक ही प्रबुद्धात्मा गुरूमैया हरेश्वरीदेवीजी के परिचय के लिए काफ़ी है। फिर भी कुछ कहना चाहता हूँ –

प्रबुद्ध रहस्यद्रष्टा माँ हरेश्वरीदेवीजी विश्व के आज तक के ध्यानगुरुओं में सर्वप्रथम एक ऐसी नारी ऊर्जा है कि जिन्होंने ध्यान की अनेक नई विधिओं की शोध की और कुछ प्राचीन विधिओं की पुनर्शोध करके भाषा को सरल बनाकर ध्यान सुक्तियाँ नाम से नया ध्यान शास्त्र रचकर ध्यान पिपासुओं को उन विधियों की वैज्ञानिक समझ भी दी। विश्व को एक ऐसे ध्यान शास्त्र की आवश्यकता थी जिसे मनुष्य आसानी से समझ पाए। एक ऐसे धर्म की जरूरत थी कि जहाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के नाम से मानव मूल्यों का ह्रास भी ना हो तथा धर्म के ऐसे जड़ बंधन भी न हों कि जहाँ मानव मुरझा जाए। विश्व को एक ऐसे धर्म की ज़रूरत थी कि जहाँ मनुष्य को भगवद्ता, नैतिकता, मानव मूल्य, ब्रह्मचर्य या अनुशासन सिखाना न पड़े, ना उसके ऊपर ये बातें थोपनी पड़ें परंतु साधक एक ऐसा माहोल प्राप्त करे कि उसकी जीवन शैली सहजता से बदल जाए। शुभ विचार और सद्गुण उसमें पनपने लगें।

विश्व को ऐसा माहोल देने के लिए पूज्य गुरूमैया अंतिम पैतीस वर्ष से विविध मार्ग से आध्यात्मिक पुरुषार्थ कर रहीं हैं। मैं अब स्वानुभव के द्वारा कह रहा हूँ कि अब पूज्य गुरूमैया के द्वारा एक ऐसे माहौल का निर्माण हो चुका है।

पूज्य गुरूमैया अनेकानेक भ्रमजालों में घिरे हुए समाज को धीरे धीरे मुक्त कर रहीं हैं। एक नारी शक्ति के द्वारा उठाई गई ये चुनौति कोई साधारण नहीं है। पूज्य गुरूमैया का जन्म गुजरात–सौराष्ट्र के भावनगर जिले के गढड़ा स्वामीना में एक औदीच्य ब्रह्माण परिवार में २४ जून १९६४ में हुआ। गढड़ा जैसे गाँव में इसे धर्म के एक अति से दूसरी अति पर पहुँची हुए एक कुदरती घटना ही कह सकते हैं। पूज्य गुरूमैया ने सन्यास लेकर कोई नाम नहीं बदला। अपने माता पिता को ही गुरु मानकर अध्यात्म के आसमान में बचपन से ही उड़ना शुरु किया।

एक अपार प्रतिभा संपन्न नारी ऊर्जा का नाम है ध्यानगुरु हरेश्वरीमैया। एक सर्जक, चिंतक, कवयित्री, आयुर्वेदज्ञ, योगिनी, धर्म प्रवक्ता, पुराणों की नवसर्जक, योग–शास्त्र और ध्यान–शास्त्र रचियता उपरांत एक सींगर, कम्पोज़र, ध्यानगुरु और वात्सल्य मूर्ति विश्व माता।

पूज्य गुरूमैया ने सिर्फ १४ साल की उम्र में ज्ञानोपलब्धि के बाद महाभिनिष्क्रमण किया। जीवन के सही दर्शन हेतु वह कूद पड़ी पूर्ण असुरक्षितता में। पर्ण–कुटी लगाकर दो वर्ष तक अन्न त्याग हुआ और आध्यात्मिक संघर्ष के साथ साथ आत्मोन्नति होती गई।

जैन शास्त्र में अनेक प्रकार के सिद्ध कहे हैं–उनमें से एक प्रकार है, स्वयंसिद्ध। पूज्य गुरूमैया को हम स्वयंसिद्ध चेतना कह सकते है। धर्मक्रांति करते करते ही स्वयं के बल बूते पर विद्याप्रेमी पूज्य गुरूमैया ने फिर से अभ्यास शुरु किया। बी.ए., एम.ए. के

बाद एम.एस. यूनिवर्सिटी, बड़ौदा से पीएच.डी. की डिग्री भी प्राप्त की। अपने भीतर पड़ी कलाओं को भी विकसित किया। भारत के कई राज्यों में करोडों लोग पूज्य गुरूमैया के सत्संग, प्रवचन, ज्ञानयज्ञ एवं ध्यान-शिबिरों द्वारा लाभान्वित हुए। गुरूमैया के धर्मक्रांतिपूर्ण विचारों का प्रचंड हकारात्मक प्रतिसाद मिला। ऐसे आरोह अवरोह में से गुज़रकर एक छोटी सी गंगोत्री धर्मक्रांति एवं ध्यानकार्य करते करते अब तो बन गई है एक महासागर।

अनेक नूतन ध्यान विधियों की पुरस्कर्ता पूज्य माँ यूरोप, आफ्रीका और यू.एस.ए. आदि खंडों में धर्मक्रांति और ध्यानशिबिरों के लिए यात्रा कर चुकी हैं। किसी भी धर्मसंप्रदाय के संगठन में जुड़े बिना स्वपुरुषार्थ, आत्मबल और अतिचेतस शक्तियों के द्वारा पूज्य गुरूमैया ने जो नूतन धर्म अभियान का आरंभ किया है उसके लिए पूरा विश्व उसका ऋणी रहेगा तथा नई दृष्टि और नया जीवन पाता रहेगा।

मैं कहता हूँ कि पूज्य गुरूमैया ने विश्व को ध्यान के लिए तंदुरस्त माहोल, विचार, नई दृष्टि एवं दिशाएं दी हैं इसलिए विश्व पूज्य माँ का ऋणि रहेगा। परंतु पूज्य माँ हमेशा कहती हैं कि मैं तो ये सब करके अस्तित्व का ऋण चुका रही हूँ पृथ्वी पर की मेरी यात्रा के दौरान।

-पूज्य गुरूमैया का अनुग्रहपात्र शिष्य
एवं आश्रम का अंतेवासी
योगी स्वामी शैलेश्वर

साधना के सुनहरे सप्त सोपान

१. प्रत्येक विधि अनुभवी ध्यान गुरु के मार्गदर्शन में हो तो ज्यादा अच्छा।

२. प्रत्येक विधियों को अपने ढंग से नहीं परंतु उचित रूप से समझने के बाद ही साधना का आरंभ करें।

३. किसी भी विधि को कम से कम २४ मिनिट करें।

४. अनुकूल विधि में कम से कम ३० दिन से लेकर ९६ दिन तक उतरें।

५. यदि संभव है तो इन ९६ दिनों के दौरान कुदरत के सानिध्य में अथवा किसी शांत आश्रम में निवास करें।

६. सात्विक आहार, सज्जनों का संग, मौन और नशाकारक पदार्थों से दूर रहना - ज्यादा हितकर है।

७. साधना समय के वस्त्र अलग रखें। सफेद, भगवा अथवा हरा रंग ज्यादा सहयोग कर पाएगा। वस्त्र खुले और स्वच्छ होने चाहिए।

-: ध्यान मंदिर :-

ए-५, सनमून पार्क, अकोटा, वडोदरा, गुजरात, भारत
www.maahareshwaridevi.com. email: info@maahareshwaridevi.com